॥ श्री चतुर्विंशति जिनाय नमः॥

{deX àdMZ nd©

प्रवक्ता : प.पू. आचार्य विशदसागरजी महाराज

कृति - **विशद प्रवचन पर्व**

आशीर्वाद - प.पू. साहित्य रत्नाकर, क्षमामूर्ति
आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज

संस्करण - प्रथम - 2010 प्रतियाँ -1000

संकलन - मुनि श्री 108 विशालसागरजी महाराज

संपादन - ब्र. ज्योति दीदी (9829076085), आस्था दीदी सपना दीदी

संयोजन - ब्र. सोनू (9829127533), किरण, आरती दीदी

प्राप्ति स्थल -
1. जैन सरोवर समिति, निर्मलकुमार गोधा, 2142, निर्मल निकुंज, रेडियो मार्केट, मनिहारों का रास्ता, जयपुर मो.: 9414812008 फोन : 0141-2319907 (घर)
2. श्री 108 विशद सागर माध्यमिक विद्यालय बरौदिया कलाँ, जिला-सागर (म.प्र.) फोन : 07581-27424
3. श्री राजेशकुमार जैन ठेकेदार, ए-107, बुध विहार, अलवर 9414016566
5. श्री सरस्वती पेपर स्टोर्स, चाँदी की टकसाल, जयपुर मो.: 9772220442, 9983461656

पुनः प्रकाश हेतु - 51/- रु.

- अर्थ सौजन्य :-

- दिगम्बर जैन श्री मुनिसुव्रतनाथ सेवा समिति, मदनगंज-किशनगढ़
- श्रीमज्जिनेन्द्र चिंतामणि पार्श्वनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समिति, तिलक नगर, भीलवाड़ा

_wDH$: amOy J«m{\$H$ AmQ>© (gSXm emh), जयपुर ● फोन: 2313339, मो: 9829050791

आस्था सुमन समर्पित

जिस प्रकार से आकाश में बादल कब बन जाते हैं, कब मिट जाते हैं इस सूक्ष्म प्रक्रिया को कोई जान नहीं पाता है, किन्तु वही बादल जब बरस जाते हैं तो मयूरों की पुकार और पपीहें की प्यास, संसार के दुखी प्राणियों को कितना सुखद मनभावन और जीवनप्रद होता है। इन बादलों का पानी सदा नहीं बरसता है। कभी-कभी एक निश्चित समय के लिए ही बरसता है अतः नदी, तलाब, कुआ, मानव सभी अपनी-अपनी योग्यतानुसार जल को संचित करके रख लेते हैं। ठीक इसी प्रकार साधु संत होते हैं जब जिस नगर में निकलते हैं धर्म की अमृत वर्षा करते हैं। साधु की अपनी कठोर चर्या, जीवन के कटु-तिक्त अनुभव साधना, तपस्या, चिंतन, मंथन से जन-जन का कल्याण करते हैं।

प.पू. क्षमामूर्ति, सिद्धान्त विज्ञ, वात्सल्य मूर्ति, कविहृदय, साहित्य रत्नाकर, सम्यक्ज्ञान शिरोमणि, कुशल आगम वक्ता, आचार्यश्री 108 विशदसागरजी महाराज के प्रवचन से हर प्राणी लाभान्वित और प्रभावित होता है। पूज्य आचार्यश्री के प्रवचन में आगम का सार, जीवनोपयोगी रहस्य, मानव की मानवता, आत्मा का श्रृंगार तत्त्व, आत्मा-परमात्मा को जानने की कला का सच्चा दिग्दर्शन झलक रहा है। भगवान महावीर की दिव्य देशना को चर्चा और चर्या दोनों में धारण कर जन-जन का कल्याण कर मोक्ष मंजिल का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

प.पू. आचार्यश्री के प्रवचन को एकत्रित करने का यह लघु प्रयास किया गया है। इस पुस्तक पर्वों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। जैसा आचार्यश्री का नाम है वैसे ही उनके गुणों की महिमा है। माँ की ममता, पिता का दुलार, भाई-बहिन का प्यार, गुरु से भगवान आदि अनन्त गुण आचार्यश्री के अन्दर समाये हुए हैं। गुणों का बखान करके तो मैं हँसी की ही पात्र बनूँगी इसलिए अंत में गुरु-चरणों मेंकोटि-कोटि नमोस्तु।

बिखरे आँसूओं के मोती हम जोड़ न सकेंगे।
आपकी भक्ति से कभी मुख मोड़ न सकेंगे।।
छूट जाए सारी दुनियाँ और सारा संसार।
पर गुरुदेव आपके चरण न छोड़ सकेंगे।।

- ब्र आस्था दीदी

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	लेख	पृष्ठ सं.
1.	गुरु पूर्णिमा	5
2.	वीर शासन जयन्ती	17
3.	नागपंचमी	29
4.	मुकुट सप्तमी	36
5.	15 अगस्त (स्वतंत्रता दिवस)	48
6.	रक्षाबन्धन	56
7.	तीर्थंकर पद के सोपान (सोलहकारण भावना का पर्व)	73
8.	वीर निर्वाणोत्सव (दीपावली)	83
9.	अष्टाह्निका पर्व	97
10.	नया वर्ष	105
11.	26 जनवरी (गणतंत्र दिवस)	115
12.	महावीर जयन्ती	122
13.	अक्षय तृतीया	135
14.	श्रुतपंचमी	142

गुरु पूर्णिमा

(प्रभु से गुरु का योग)

भोर का अंतिम पहर था। सूर्य अपनी गति से बढ़ता जा रहा था। रात्रि की लालिमा विलीन होती जा रही थी। पक्षी अपनी धुन में धुन गुनगुनाते हैं, वहीं मनुष्य भी अपनी नींद तोड़कर अपने-अपने मन्तव्य से निकल पड़े, पशु जंगल की ओर बढ़ रहे थे। इस प्रकार के सुहावने मौसम में जहाँ चहुँ ओर मंगल छाया था, सरिता और सरोवर अपनी सुन्दरता से लोगों के मन को मुग्ध कर रही थी। प्रभु महावीर के समवशरण में जहाँ भक्तों की कतारें लगी हुईं थीं। चातक पक्षी की भाँति स्वाति नक्षत्र के इंतजार में कब स्वाति नक्षत्र आवे और हमें जल ग्रहण करने को प्राप्त हो जावे उसी तरह भव्य प्राणी प्रभु की ओर नेत्रों की टकटकी लगा दिव्यदेशना के लिए निहार रहे थे।

प्यारे बन्धुओ ! आज का दिन पावन पवित्र है। जब भगवान महावीर स्वामी को केवलज्ञान हो गया; किन्तु देशना प्राप्त नहीं हो रही थी। भगवान की 65 दिन तक दिव्य ध्वनि नहीं खिरी। लोगों को चिंता हुई, लोग निराश होने लगे, लोगों को उपदेश सुनने के लिए नहीं मिला; क्योंकि गणधर का अभाव था। यदि आज लोगों को 65 दिन तो ठीक 5 दिन भी उपदेश सुनने को न मिले तो लोगों का छठवें दिन से आना बन्द हो जाएगा। 65 दिन तक दिव्य ध्वनि नहीं खिरी फिर भी लोग निराश नहीं हुए। फिर भी लोग प्रतिदिन सभा में उपस्थित होते रहे। सौधर्म इन्द्र को चिंता हुई क्या बात है? केवलज्ञान हो गया; किन्तु दिव्यदेशना नहीं मिल पा रही है। सौधर्म इन्द्र बटुक का वेश धारण करके विद्या विशारद

इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति ब्राह्मणों के पास पहुँचता है। ब्राह्मण बहुत विद्वान् थे। ज्ञान तो था; किन्तु सम्यक्ज्ञान नहीं, मिथ्याज्ञान था, मिथ्याभिमान था। वहाँ पहुँचकर बटुक ने प्रश्न पूछ लिया। कहा कि हमारे गुरु अखण्ड मौन लिये हुए हैं तो सोचा आपसे ही उत्तर प्राप्त कर लें। आप कृपया मेरे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें। मेरा प्रश्न हैह्न

त्रैकाल्यं द्रव्य-षटकं नव-पद सहितं जीव षट्काया लेश्याः।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान चारित्र भेदाः।।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन-महितैः प्रोक्त मर्हद्-भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्धाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्ध दृष्टिः।।

जैसे ही ये बात सुनी सभी भौचक्के रह गए। सब कुछ तो मैंने पढ़ा है; किन्तु तीन काल छः द्रव्य आदि यह सब मैंने नहीं पढ़ा। तीनों भाई विद्वान् थे, तीनों के 500-500 शिष्य थे; किन्तु सम्यक्दर्शन के अभाव में अहं था। जैसे आप अहं से दिन-रात घिरे रहते हैं, छोटी-छोटी बातों में अहम् आ जाता है और अपने स्वरूप को भूल जाते हैं। उसी प्रकार उन विद्वानों को सम्यक्दर्शन के अभाव में मिथ्याज्ञान था, वह अपने स्वरूप को भूल रहे थे। आज लोगों की स्थिति कुछ इस प्रकार हैह्न

''हृदय के समन्दर में ऐसी सुरा भर ली,
कि कटुता की लकीर कुछ और बड़ी कर ली''

इन्द्रभूति सोचता थाह्न हम तो बहुत बड़े ज्ञानी हैं। जैसे ही प्रश्न सुना उत्तर नहीं दे पाए। **''काला अक्षर भैंस बराबर''** जैसी स्थिति बनी थी। तब मालूम होता है ज्ञान का 500 शिष्यों के बीच में से उत्तर नहीं दे पाए। किसी ने भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। अपनी बात छिपाने के लिये

गौतम ने कहा– उत्तर हम तुम्हें नहीं तुम्हारे समक्ष नहीं, गुरु के पास में ही देंगे और चल देते हैं विपुलाचल की ओर। आगे–आगे सौधर्म इन्द्र जो बटुक के भेष में थे और उनके पीछे–पीछे तीनों भाई 500–500 शिष्य सहित जा रहे थे। जैसे ही समवशरण में पहुँचते हैं, सर्वप्रथम मानस्तंभ देखते ही उनका मान गलित हो जाता है। गौतम आदि विद्वानों ने एक बार दर्शन किये, समवशरण देखा तो उनका मान गलित हुआ; किन्तु आपने एक बार नहीं कई बार समवशरण के दर्शन किए। आज तक आपका मान, अहं, अहंकार गलित नहीं हुआ बल्कि मानस्तंभ को देखकर मान बढ़ता हुआ नजर आता है। कोई कहता है फलाने व्यक्ति ने 31 फुट ऊँचा मानस्तंभ बनवाया है, तो हम 41 फुट या 51 फुट बनवाकर रहेंगे, तो कोई 61, 71 या 108 फुट बनवाने की बात करते हैं। जैसे–जैसे मानस्तंभ की ऊँचाई बढ़ाते जाते हैं वैसे–वैसे मान बढ़ता जाता है। उसी समय गौतम नतमस्तक हो जाते हैं, चरणों में झुक जाते हैं और अनेक प्रकार से पश्चात्ताप करते हैं। हे भगवन् ! आज तक हम कहाँ थे? हमने धर्म को नहीं पहचाना। मैं अहंकार में आकर आप से ही विवाद करने आ गया। हे भगवन् ! मुझे क्षमा कर दो और वह तीन लोक में श्रेष्ठ जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करता है, उसी समय उसे मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो जाता है। आज के दिन ही दीक्षा ग्रहण कर गौतम स्वामी महावीर स्वामी के प्रमुख गणधर बने थे। वे ही वास्तव में गुरु हैं तब से लेकर आज तक 'गुरु–पूर्णिमा' मनाई जाती है। श्रावक अनेक प्रकार से गुरु का रूप धारण करते हैं। जो लौकिक गुरु है, वह गुरु नहीं हैं, माँ को भी गुरु माना है, जो पढ़ाती है–वह गुरु है, जो बड़ा है वह गुरु है; किन्तु आचार्य भगवन् कहते हैं, वास्तविक गुरु तो गौतम गणधर ही हैं। कार्यक्रम को देखकर

लोग कहते हैं– आनन्द आ गया; लेकिन वास्तविक आनन्द कार्यक्रम में नहीं भक्ति में होता है। जहाँ भक्ति हो वहीं आनन्द प्राप्त होता है। आनन्द खाने में नहीं भूख में होता है। यदि किसी को जोर की भूख लगी है तो उसे नमक रोटी भी अच्छी लगती है; किन्तु जिसे भूख नहीं है उसे खाने की तो दूर की बात है उसे देखना भी अच्छा नहीं लगता है। हमारे गुरु वीतरागी हैं, उनकी भक्ति करना हमारा कर्त्तव्य है।

''आज हमारा मुकद्दर हमारे साथ हो गया।
जो गुरुदेव के चरणों में मेरा माथ हो गया।।''

आज हमारे लिए परम हितैषी, उपकारी, कल्याणकारी गुरु का सान्निध्य प्राप्त हुआ। यदि सान्निध्य पाकर भी गुरु भक्ति नहीं की, गुरु के महत्त्व से अनभिज्ञ रहे तो कैसे मोक्ष मार्ग में चल सकते हैं? गुरु हमारे लिए अपने साथ मोक्ष ले जाने वाले हैं।

गुरु शब्द दो अक्षरों से नहीं चार अक्षरों से मिलकर बना है। ग्,उ,र्,उ। 'ग्' का तात्पर्य है जो गंभीर हो, 'उ्' का तात्पर्य जो उदार हो, 'र्' का तात्पर्य है जो रहस्यों को, 'उ्' का तात्पर्य है उद्घाटन करने वाला हो। जिसके अन्दर ये गुण पाए जाएँ वही गुरु है और कहा भी हैह्लह्ल

''गु शब्दस्त्वन्धकारस्य रु शब्दस्यतन्निवर्तकः,
अन्धकार विनाशित्वाद गुरु इत्याभिधीयते।''

'गु' अर्थात् अंधकार 'रु' अर्थात् निवारण करने वाले। जो अज्ञानरूपी अंधकार का निवारण करने वाले हैं, वही सच्चे गुरु है। ग्रन्थराज क्षत्रचूड़ामणि में आ.श्री बादीभ सिंह सूरी जी ने भी गुरु की परिभाषा कही हैह्लह्ल

''रत्नत्रय विशुद्धासन पात्र स्नेही परार्थकृत,
परिपालित धर्मोहि भवानोस्तारको गुरु।''

गुरु रत्नत्रय से विशुद्ध होते हुए भी, भव्य जीव पात्रों पर स्नेह रखने वाले हैं। **'अहिंसा परम धर्म'** का परिपालन करने वाले गुरु ही भवसिन्धु में डूबते हुए भव्यजनों के तारण–तरण हैं। अंधकार की ओर ले जाने वाले गुरु पग–पग पर मिलते हैं; किन्तु प्रकाश की ओर ले जाने वाले गुरु 1000 में से 1–2 ही मिलते हैं। गुरु सूर्य की तरह होते हैं जो स्वयं भी प्रकाशित होते हैं और दूसरों को भी प्रकाशित करते हैं। गुरु के सम्बन्ध में एकलव्य का कथानक आता है।

गुरु द्रोणाचार्य के पास मात्र उच्च वर्ण वाले कुमारों को ही शिक्षा दी जाती थी। शूद्र वर्ण वाले कोई शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते थे। आश्रम से कुछ दूर पर एक भील का घर था। वह दूसरे बच्चों को बाण चलाता हुआ देखता तो उसके भी मन में ललक जागृत होती कि मैं भी बाण चलाने की शिक्षा प्राप्त करूँ। एक दिन वह गुरु द्रोणाचार्य के पास पहुँचता है। यथायोग्य प्रणाम करके निवेदन करता है– हे गुरुदेव ! आप सबका कल्याण करने वाले हैं, आप परम हितकारी हैं। मैं भी आपके चरणों के प्रसाद से कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। धनुर्विद्या सीखना चाहता हूँ।

गुरु द्रोणाचार्य उस बालक से उसका नाम पूछते हैं। वत्स ! तुम्हारा नाम क्या है? तुम कौन सी जाति के हो? तब वह बालक उत्तर देता है– गुरुदेव मेरा नाम एकलव्य है और मैं भील जाति का हूँ। तब गुरु द्रोणाचार्य कहते हैं– यहाँ शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को ही है। तुम यहाँ शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। कई बार निवेदन करने पर

भी असफल रहा तब भी वह पुनः उसी श्रद्धा, आस्था–भक्ति से प्रणाम करके वापिस अपने स्थान पर चला जाता है और अपने आपको बहुत धिक्कारता है कि हे परमात्मा ! मैंने ऐसा कौन सा पाप कार्य किया था, जो मैं इस काबिल भी न बन सका कि गुरु से शिक्षा प्राप्त कर सकूँ और अनेक प्रकार से दुःखी होता है। उसके मन में शिक्षा प्राप्त करने की लगन थी। इसलिए वह गुरु की मिट्टी की मूर्ति बनाकर समर्पण भाव से विद्याध्ययन करने लगा और धीरे–धीरे वह श्रेष्ठ धनुर्धर को भी पीछे करने लगा। एक दिन की बात है कि एकलव्य बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था, तभी गुरु आश्रम का एक कुत्ता आकर भौंकना प्रारम्भ कर देता है। एकलव्य विद्याध्ययन में विघ्न आता देखकर उसके मुँह में बाण इस तरह से भरता है कि बाण सीधे मुँह में लगा; क्योंकि उसे **''शब्द भेदी विद्या''** प्राप्त हो गई थी। उस कुत्ते को देखकर आश्रम में शिक्षारत विद्यार्थी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। इस कुत्ते के मुख में शब्दभेदी बाण किसने भर दिए। पता लगाने हेतु कौरव, पांडव इत्यादि छात्र कुत्ते के पीछे–पीछे चल देते हैं। आगे चलकर एकलव्य को देखते हैं और पूछते हैं– मित्र, यह शिक्षा आपने किससे प्राप्त की है? एकलव्य ने बेझिझक होकर उत्तर दिया– गुरु द्रोणाचार्य से। तब छात्रों ने कहा– वह तो भील बालकों को शिक्षा नहीं देते हैं। बालक चुप रहा। आश्रम में आकर द्रोणाचार्य से चर्चा की तो गुरु द्रोणाचार्य ने भी कहा– मैंने उसे शिक्षा नहीं दी।

गुरु द्रोणाचार्य ने छात्रों से कहा– चलो, हम चलकर पूछते हैं। गुरु द्रोणाचार्य को पास आते देख एकलव्य खड़े होकर यथायोग्य वंदना, स्तुति करता है। गुरु द्रोणाचार्य पूछते हैं– तुमने कुत्ते के मुँह में बाण क्यों भर दिए? वह हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहता है– यह कुत्ता मेरे

विद्याध्ययन में विघ्न पैदा कर रहा था। इसलिए मैंने कुत्ते का भौंकना बन्द करने के लिए बाण भर दिए। पुनः प्रश्न पूछते हैं– तुम्हारे गुरु कौन हैं? वह उत्तर देता है– मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं। एकलव्य का उत्तर सुनकर गुरु द्रोणाचार्य एकलव्य से कहते हैं कि मैंने तुम्हें शिक्षा नहीं दी है। मैं तो केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को ही शिक्षा देता हूँ। तब एकलव्य ने कहा– मैंने तो गुरु द्रोणाचार्य से शिक्षा प्राप्त की है। तब गुरु द्रोण ने कहा– मैं गुरु द्रोण हूँ अगर तुमने मुझसे शिक्षा प्राप्त की है तो मुझे दक्षिणा देनी होगी। एकलव्य उसे सहर्ष स्वीकार कर लेता है। वह उसे अपना अहोभाग्य मानता है। गुरुदेव आप जो माँगोगे, मैं देने को तैयार हूँ और गुरु द्रोण ने धन नहीं माँगा, न ही संसार की इष्ट वस्तुएँ माँगी; माँगा तो दाहिने हाथ का अँगूठा माँगा। उसने भी सहर्ष ही अँगूठा काटकर दे दिया। गुरु ने उसके सारे जीवन की सम्पत्ति माँग ली।

उसके जीवन की सारी सम्पत्ति दाँये हाथ का अँगूठा था; क्योंकि उससे ही तीर चलाया जाता है। जीवन भर मेहनत से प्राप्त की गई सम्पत्ति थी वह, सम्पत्ति पलभर में खाक हो गई। उसके जीवन का, उसकी मेहनत का मूल्य मात्र अँगूठा देने में ही चला गया। एकलव्य बुद्धिमान न था और न ही उच्च वर्ण का था; परन्तु उसमें शिक्षा की लगन थी। लगन और रुचि से ही कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं। क्या वर्तमान में कोई ऐसा व्यक्ति है जिसके लिए शिक्षा देने से मना कर दिया जाए, यदि किसी के साथ ऐसा हो जाए तो वह जिन्दगी भर उसके पास नहीं जाएगा। धन्य है ! गुरु चरणों में एकलव्य का समर्पण भाव कि उसने अपने जीवन की सम्पूर्ण सम्पत्ति को क्षण भर में गुरु के लिए समर्पित कर दिया।

गुरु के लिए शास्त्रों में अनेक उपमाएँ दी गईं हैं। जैसे– गुरु दिशासूचक यंत्र की तरह होते हैं, गुरु नाविक की तरह होते हैं, गुरु श्रेष्ठ राहगीर होते हैं, गुरु आकाश की भाँति अनन्त होते हैं, गुरु बहुत बड़े कलाकार होते हैं, गुरु शिष्यरूपी पत्थर को मूर्ति बनाते हैं, गुरु दर्पण की भाँति होते हैं, गुरु प्राणवायु की भाँति होते हैं, गुरु नेत्र की तरह होते हैं, गुरु घड़ी की तरह होते हैं, गुरु फूल की तरह होते हैं, गुरु सूर्य की तरह होते हैं, गुरु वनमाली की तरह धर्मरूपी बगीचे को सुगंधित करने वाले होते हैं।

जिस प्रकार से उपवन में खिले हुए फूल सारे बगीचे की सुन्दरता बढ़ाते हैं। जो स्वयं को भी सुगंधित करते हैं और दूसरों को भी सुगन्धित करते हैं उसी प्रकार गुरु धर्मरूपी बगीचे से शिष्यों को अपने ज्ञान के माध्यम से संयम, तप, त्याग द्वारा रत्नत्रय के माध्यम से सुगन्धित करते हैं। गुरु चरणों में समर्पण ही परमात्म पद का मूल है। किसी शायर ने कहा भी हैह्लह्ल

''मिटा दे अपनी हस्ती को अगरचे मर्तवा चाहे,
कि दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार होता है।''

गुरु धर्म का रास्ता बतलाने वाले होते हैं, गुरु मोक्षमार्ग बतलाने वाले होते हैं, गुरु के बिना व्यक्ति लक्ष्यविहीन होता है, गुरु सागर के समान गंभीर होते हैं, गुरु की महिमा अवर्णनीय है जिस प्रकार सूर्य को दीपक दिखाने से कोई लाभ नहीं है, उसके आगे दीपक का प्रकाश फीका पड़ जाता है। उसी प्रकार गुरु के गुणों का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना है। कहा भी हैह्लह्ल

धरती सब कागज करूँ, लेखनी सब वनराय।
सात समन्दर स्याही करूँ, गुरु गुण लिखा न जाए।।

गुरु इतने महान् हैं कि उनमें संसार के सारे गुण समाये हैं। 'सुभाषित' में कहा हैह्न

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या च द्रविणम् त्वमेव, त्वमेव देवं च मम् देव-देव।।

गुरु माँ हैं, गुरु ही पिता हैं, गुरु ही भाई हैं, गुरु ही बन्धु हैं, गुरु ही जीवन साथी हैं, गुरु ही आचार्य हैं, गुरु एक होते हैं; किन्तु उनमें अनेक गुण, अनेक रूप गुरु में समाये हैं, गुरु ही विद्या हैं और गुरु ही मेरे परम परमात्मा हैं। गुरु नारियल की भाँति होते हैं। जिस प्रकार से नारियल ऊपर से कठोर होता है; किन्तु अन्दर से कोमल, नरम, स्वादिष्ट होता है। उसी प्रकार से गुरु कर्त्तव्यपालन करने और कराने में कठोर होते हैं; किन्तु उनका हृदय कोमल होता है। गुरु शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द हैं जो बहुत ही गहरे रहस्यों को अपने में संजोए हैं जैसे- अध्यापक शब्द में चार अक्षर है। **'अ' आध्यात्मिक, अध्ययनशील, 'ध्य' ध्यानशील, 'प' परम, 'क' कल्याणकारी।** जिसमें यह गुण हैं वह गुरु हैं। शिक्षक शब्द में तीन अक्षर हैं, **'शि' शिष्ट, 'क्ष' क्षमाशील, 'क' कर्त्तव्य-परायण।** उपाध्याय शब्द में चार अक्षर हैं। **'उ' उत्कृष्ट, 'पा' पावन-पवित्र, 'ध्या' ध्यानशील, 'य' यति।** आचार्य शब्द चार अक्षरों से बना है। **'आ' आध्यात्मिक, 'चा' चारित्रवान, 'र' रत्नत्रयधारी, 'य' यत्नशील।** गुरु माँ से भी बढ़कर होते हैं। माता-पिता तो मात्र तन को जन्म देकर पालन-पोषण करके

अपने पैरों पर खड़ा करके दूर हो जाते हैं; किन्तु गुरु अँगुली पकड़कर मोक्षमार्ग में चलना सिखाते हैं। उनका उसमें किसी प्रकार का भी स्वार्थ भाव नहीं होता है। निष्काम भावना से अपने शिष्य का, अपने बेटे की तरह अपने साथ-साथ उत्थान करते रहते हैं। कहा भी हैह्न

तन को रचा सम्हाला, माता-पिता ने मेरे।
जीवन दिया गुरु ने, भर ज्ञान उर हमारे।।

गुरु जो आरम्भ, परिग्रह से रहित हैं और ज्ञान, ध्यान, तप में लीन हैं वही सच्चे गुरु हैं। इसके अलावा जो भी गुरु हैं, वह लौकिक गुरु हैं, सच्चे नहीं हैं। गुरु का गुणगान एक जिह्वा से क्या, अनेक जिह्वा से भी नहीं किया जा सकता है।

गुरु-दर्शन का महत्त्व बताते हुए महाभारत में कथन किया गया है जब युद्ध की विभीषिका पूर्ण हुई तब एक ओर अर्जुन और दूसरी ओर दुर्योधन नारायण श्रीकृष्ण के पास युद्ध में सहयोग की इच्छा करने गये। श्रीकृष्ण अपनी शैय्या पर सो रहे थे। तब दुर्योधन सिरहाने पर एवं अर्जुन पैरदान की ओर खड़े होकर जागने का इन्तजार करने लगे जैसे ही श्रीकृष्ण की नींद खुलती है, दोनों ही एक साथ युद्ध की प्रार्थना करते हैं। तब श्रीकृष्ण ने कहा- आप दोनों मेरे पास सहयोग हेतु आये और दोनों ने निवेदन किया कि अब मैं किसका साथ दूँ? इस स्थिति में श्रीकृष्ण ने एक उपाय सोचा और कहा एक ओर मेरी सेना है और दूसरी ओर मैं स्वयं हूँ। आप लोग चुन लें कि किसे चाहते हैं? दुर्योधन ने सेना और अस्त्र-शस्त्र स्वीकार किए थे एवं अर्जुन ने श्रीकृष्ण को स्वीकार किया था। दोनों ओर से तैयारियाँ चल रही थीं। पाण्डव पक्ष भयभीत था कि एक तो दुर्योधन के पास पहले से बहुत

सेना एवं अस्त्र–शस्त्र हैं, साथ ही श्रीकृष्ण की सेना भी आ मिली। इस स्थिति में कैसे विजय की प्राप्ति हो? युद्ध के लिए गमन की भेरी बज चुकी थी। युधिष्ठिर आदि पाण्डव एवं नारायण श्रीकृष्ण द्वार पर खड़े चिंतामग्न थे। तभी श्रीकृष्ण की नजर सामने से आते हुए मुनिराज पर गई तो श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर बोले।

आरोह स्पन्नं पार्थ, गाण्डीवं च करे कुरु।
निर्जिता मैदनी मन्ये, निर्ग्रन्थः यदि सन्मुखैः।।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा– भो अर्जुन ! देखो, सामने से वीतराग मुद्रा के धारी नग्न दिगम्बर साधु आ रहे हैं। ये शुभ शकुन है, अपनी विजय निश्चित है, विश्व में कोई शक्ति अपने लिए पराजित नहीं कर सकती है। यह वीतराग मुद्रा के दर्शन का फल है। फिर गुरु–दर्शन के साथ यदि उपदेश गुरुवाणी जिन भव्य प्राणियों को प्राप्त हो जाए, हम तो कहते हैं वह अवश्य ही निकट भव्य है; क्योंकि गुरुवाणी सुनने का अवसर बहुत ही पुण्य का फल है, हर किसी को प्राप्त नहीं होता है। किसी कवि ने संतों का महत्व कहा हैह्लह्ल

आग लगी आकाश में, झर–झर झरें अंगार।
संत न होते जगत् में, जल जाता संसार।।

आद्य गुरु गौतम स्वामी के चरणों में कोटिशः नमन् करते हुए ढाई द्वीप में विराजमान तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों का शिरसः विशद नमन्।

कातंत्र रूपमाला में भी सर्वबर्मणाचार्य ने लिखा हैह्लह्ल

''गुरु भक्त्या वायं सार्द्धद्वीपद्वितयवर्तिनः,
वंदामहे त्रिसङ्ख्योन नवकोटि मुनीश्वरान।''

ढाई द्वीप में तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों को हम गुरुभक्ति सहित नमस्कार करते हैं।

कहने का तात्पर्य है कि गुरु चरणों का सान्निध्य पाकर भी जो अपना जीवन, धर्म, संयम की ओर नहीं लगाता है तो उससे बड़ा दुनियाँ में कोई मूर्ख (अज्ञानी) नहीं है।

* कहाँ चले गये गुरुवर... *

चिट्ठी न कोई संदेश, जाने वो कौन सा देश, जहाँ तुम चले गये।
मेरे मन को लगाकर ठेस, जाने वो कौन सा.....

एक आह भरी होगी, हमने ना सुनी होगी,
जाते–जाते तुमने, आवाज तो दी होगी।
हर वक्त यही है गम, उस वक्त कहाँ थे हम,
जहाँ तुम चले गये।। चिट्ठी न..... ।।1 ।।

हर चीज पे अश्कों से, लिक्खा है तुम्हारा नाम।
ये रस्ते ये गलियाँ, तुम्हें कर न सके प्रणाम।।
ये रह गयी दिल में बात, जल्दी से छुड़ा के साथ,
जहाँ तुम चले गये।। चिट्ठी न..... ।।2 ।।

अब यादों के काँटे, इस दिल को चुभते हैं।
न दर्द ठहरता है, न आँसू रुकते हैं।।
तुम सपनों में आते, न हमको मिल पाते।
जहाँ तुम चले गये।। चिट्ठी न..... ।।3 ।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

वीर शासन जयन्ती

जो दिव्य ध्वनि इस जगती पर, बदले दुर्दिन की बेला है।
जो समवशरण में खिरी जिसे, नत हो गणधर ने झेला है।।
श्री वीर प्रभु की दिव्य देशना, को शत् नमन हमारा है।
यह वाणी ही जिनवाणी है, जिसमें विराग की धारा है।।

प्यारे बन्धुओ ! हमने आगम और आध्यात्म का अध्ययन करके जाना कि ये जिन्दगी बूँद के समान है, बूँद का उपयोग कर लिया, बूँदों को इकट्ठा कर लिया तो सागर बन जाता है। सागर से बूँद-बूँद निकाली जाए तो सागर खाली हो जाता है। भजन में कहा हैह्लह्ल

जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाए रे !
होनी-अनहोनी कब, क्या घट जाए रे !

समय ही सोना है, सोना क्या सोने से भी अधिक महत्वपूर्ण है; किन्तु आज इंसान समय को व्यर्थ के कार्यों में खोकर काट रहा है, जिन्दगी के दिनों को जीता नहीं बल्कि काट रहा है। एक बार की घटना याद आती है। एक ट्रेन आहिस्ते-आहिस्ते जा रही थी। डिब्बे में यात्री बैठे थे। एक यात्री ने दूसरे यात्री से पूछा- आप कहाँ जा रहे हैं? उसने उत्तर दिया- दिल्ली जा रहे हैं। आश्चर्य से कहा- दिल्ली जा रहे हो, दिल्ली तो हम भी जा रहे हैं। दिल्ली में आप कहाँ रहते हो? उसने उत्तर दिया- चाँदनी चौक में। वहीं पर तो मैं भी रहता हूँ। पुनः यात्री ने पूछा- कौन से मौहल्ले में रहते हो? उसने कहा- आनन्द नगर में रहता हूँ। अरे ! यहीं पर तो मैं भी रहता हूँ। फिर उसने कहा- आनन्द नगर में कौन-से फ्लैट में रहते हो? दूसरे यात्री ने उत्तर दिया- 28

नम्बर में। अच्छा, वहीं पर तो मैं भी रहता हूँ। दिल्ली में, उसी मौहल्ले में, उसी फ्लैट में, उसी कमरे में दोनों रहते हैं। डिब्बे में बैठे यात्रियों को आश्चर्य हुआ। बात भी आश्चर्य की है, साथ रहते हुए भी अपरिचित। आखिर जब एक व्यक्ति से नहीं रहा गया तो व्यक्ति ने बोल दिया- बड़ी विचित्र बात है, एक ही स्थान पर रहते हो, फिर भी एक-दूसरे को नहीं जानते हो। तब उसने कहा- दो के बीच में नहीं बोलना चाहिए। तब यात्रियों ने कहा- हम भी जानते हैं; लेकिन मामला क्या है? तब बात करने वालों ने कहा- वास्तव में हम दोनों पिता-पुत्र हैं। उस यात्री ने पूछा- फिर इस प्रकार की बातें क्यों कर रहे हैं? तब उसने कहा- समय काट रहे हैं। अरे ! आपकी क्या औकात है कि आप समय को काट सको, समय पास कर सको, ऐसा तो नहीं कि कहीं आपकी जिन्दगी का समय कट रहा हो या पास हो रहा हो।

प्यारे भाई ! आप समय को पास नहीं कर सकते हैं बल्कि समय आपको पास करता चला जा रहा है। किसी की जिन्दगी के 10 वर्ष पास हो गये तो किसी के 20,30,40,50,60,70 इत्यादि। समय तो अपनी गति से निरन्तर चलता जा रहा है। आप जरूर पास हो जायेंगे और समय आने पर इस जिन्दगी से निराश हो जायेंगे।

इंसान के अन्दर ताकत कहाँ है कि समय को पास कर सके अथवा कोई विद्यार्थी को भगवान पास या फैल कर दे। क्या ताकत है कि कोरी कॉपी रखने पर भी पास हो जाए। आजकल ऐसा भी संभव है कि पैसे के बल से पास भी हो सकते हैं और दूसरों को फैल भी करवा सकते हैं। हम आपसे कहते हैं, थोड़ा-सा समय हमारा भी पास कर दो, जिससे हम शीघ्र ही

संसार का अन्त कर मुक्ति प्राप्त कर सकें। आज श्रावण कृष्णा एकम् के दिन को **'वीरशासन जयंती'** के रूप में मनाया जाता है। आपको नहीं मालूम श्रावण कृष्णा एकम् के दिन से 65 दिन पहले वैशाख सुदी दशमी के दिन भगवान महावीर को केवलज्ञान हो गया; किन्तु दिव्यध्वनि नहीं खिरी तब तक शासन नहीं कहलाया। सब कुछ हो गया; किन्तु 'वीरशासन' नहीं हुआ। यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार चुनाव में कोई चुनाव जीत जाता है; लेकिन जब तक चार्ज प्राप्त न हो तब तक उसे शासन नहीं मिलता है। जैसे ही चार्ज उसके हाथ में आता है, वह शासन उस व्यक्ति का कहलाने लगता है। वर्तमान में 'वीरशासन' चल रहा है। बड़ा आश्चर्य है कि आपके लिए 66 दिन का अवसर भी नहीं मिला है। आधार ताल वालों को 6 दिन का समय मिला है, प्रवचन का लाभ हो रहा है, फिर भी लोग धर्मलाभ से वंचित हैं, लाभ नहीं ले पा रहे हैं। उस समय के लोग आपके जैसे नहीं थे कि प्रवचन का लाभ नहीं ले रहे थे; किन्तु दुर्भाग्य था कि रोज पहुँचने पर भी दिव्यदेशना नहीं खिरती थी। इस समय थोड़ी-थोड़ी देर में समय निकल जाता है और मुनिराज की दिव्यदेशना खिरना बन्द हो जाती है तब पश्चात्ताप होता है। आज नहीं सुन पाए; लेकिन सोच लेते हैं- कोई बात नहीं कल सुन लेंगे। कल भी यही स्थिति होती है और इसी क्रम में चौमासा का समय भी निकल जाता है। दिव्यध्वनि का समय 6 घड़ी अर्थात् 2 घंटे 24 मिनट का होता है। आप लोग एक घंटे के लिए भी स्थिर होकर नहीं बैठ पाते हैं। कदाचित् लोग समय से पहुँचते हैं तो इतना संहनन नहीं है। कभी कमर में दर्द होता है तो कभी घुटने में। कहीं कुछ होता है तो कहीं कुछ शंकाएँ होती हैं; पर शंका छोटी हो या बड़ी, शंका तो शंका होती है। लघुशंका आ गई तो बैठ नहीं सकते हैं। समवशरण में न लघुशंका होती है और न ही दिमाग की

शंका होती है। न द्रव्यलिंगी का भेद है या न भावलिंगी, मूलगुण के धारी हैं या नहीं, न कमर दर्द है, न सिर दर्द होता है। वहाँ का वातावरण तो एकदम उत्कृष्ट होता है।

भगवान महावीर का जन्म पंचमकाल प्रारम्भ होने के पूर्व मात्र 75 वर्ष 8 माह 15 दिन शेष रहा था तब हुआ और गृहस्थ में 28 वर्ष 7 माह 12 दिन रहे। घर में रहकर के बातचीत के द्वारा माता-पिता को अनुरंजित करते थे। 29 वर्ष में जहाँ व्यक्ति अपने जीवन में अनेक सपने संजोता है कि मेरी शादी होगी, बच्चे होंगे, जीवन सुख से व्यतीत करेंगे आदि-आदि। वहीं वर्धमान ने भोगों को क्षणिक स्वप्न जानकर तिलांजलि दे दी। माता-पिता बैठे हैं, पास में वीर पुत्र वर्धमान बैठे हैं। माँ सोचती है- मेरा बेटा राजा बनेगा, बहू आयेगी, सुन्दर-सुन्दर बातें करेगी, मेरी सेवा करेगी, गर्म-गर्म रोटी खिलाएगी। हर इंसान की यही सोच होती है, फिर भले गर्म-गर्म चिमटा क्यों न खाना पड़े। पिता भी यही सोचता है- उस समय राज्य में एक ही शासन होगा। मेरा बेटा महाराज बनेगा, अपने राज्य का विस्तार करेगा और अपनी प्रजा के दुःख-दर्द को दूर कर एक खुशहाल राज्य की स्थापना होगी; क्योंकि हर पिता की एक ही सोच होती है- मेरा जीवन जैसा बीता तो ठीक है, मैं अपने बेटे के लिए अच्छा राज्य, गृह देकर जाऊँगा। जिसमें अपना जीवन एक परिवार में रहकर आनन्दमयी जीवन जी सके; किन्तु वर्धमान के लिए यह सब रास नहीं आया। वह सीमित स्वप्न का राज्य नहीं करना चाहते थे अतः सीमित को छोड़कर असीमित के लिए अहिंसा के अस्त्र को लेकर निकले। अहिंसा की तलवार नुकीली करने में, चमकाने में 12 वर्ष 3 माह 5 दिन का समय लग गया। अर्थात् तपरूपी अग्नि से स्वयं को तपाया तो केवलज्ञान

की प्राप्ति हो गई। वही सारा खेल अहिंसा का है, अहिंसा के बल से डंडे के बल पर चलने वाले मुट्ठी भर हाड़ के पिटारे महात्मा गाँधी ने देश को स्वतंत्र करा दिया, आजाद करा दिया। हमेशा–हमेशा के लिए देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करा दिया। अहिंसा रूपी खड्ग को देखकर किसी की हिम्मत उनसे जूझने की नहीं पड़ी, जूझने वाले सभी नतमस्तक हो जाते थे। महात्मा गाँधी ने अहिंसा का सहारा लिया था, सदियों से छाये अंग्रेजी साम्राज्य को दूर किया था। वह कितने क्षमाशील थे, एक बार एक अंग्रेज ने गाँधीजी के गाल पर चाँटा लगाया तो उन्होंने उसे कुछ न कहकर दूसरे गाल पर मारने को कहा। अंग्रेज पानी–पानी हो गया और गाँधीजी के पैरों को पकड़कर क्षमा माँगने लगा। यदि आप उस जगह होते तो शायद एक के बदले में दो थप्पड़ लगा देते तो क्या हो जाता। अहिंसा की महक नीचे की ओर नहीं, ऊपर की ओर उठती है। फूल में सुगन्ध की भाँति महकती है।

अहिंसा वह माँ है जिसकी गोद में बैठकर सारा जगत सुख–शांति का अनुभव कर सकता है; परन्तु खेद है आज अहिंसा माँ की गोद में कोई बैठना नहीं चाहता है। शायद इसलिए प्रकृति आज रूठी है और मानव परेशान है। भला कोई बेटा माँ की उपेक्षा कर सुखी होता है क्या? आज अपना सुख दूसरों का दुःख बन रहा है तो दूसरे का सुख भी आदमी को दुःखी किये है और यही सबसे बड़ी हिंसा है। अतः इससे बचने के लिए ऐसा जीवन जिया जाये कि दूसरों को कष्ट न हो और परमात्मा के सामने एक प्रार्थना ये भी हो जायेह्लह्ल

''सुखी रहें सब जीव जगत् के, कोई कभी न घबरावे।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।।''

अहिंसा की साधना के लिए सत्य और अस्तेय की उपासना भी आवश्यक है। व्यक्ति ऐसे वचनों का सदुपयोग करें जो किसी को चुभने वाले न हों, अहिंसा की साधना के लिए ब्रह्म और अपरिग्रह की साधना भी जरूरी है। क्योंकि अहिंसा और अपरिग्रह एक ही सिक्के के दो पहलू, हैं। जहाँ परिग्रह है, वहाँ हिंसा नियम से होती है। परिग्रह के धरातल पर ही महाभारत जैसा संग्राम निर्मित हुआ। यदि कौरवों ने पाँच गाँव का लोभ भी छोड़ा होता तो अशांति की आग में न जलते। हम भी पाँचों इन्द्रियों को जीतने की साधना कर विषयों की आग से बच सकते हैं और सही अर्थ में महावीर की उपासना कर सकते हैं; क्योंकि इन्द्रिय निग्रह की साधना ही महावीर की सच्ची उपासना है। **परमात्मा के द्वार पर दो प्रकार के लोग पहुँचते हैं– पुजारी और भिखारी। पुजारी परमात्मा का गुणगान करते हुए उनके वही गुण माँगता है।** जैसे कि प.पू. आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने **'सर्वार्थसिद्धि'** का मंगलाचरण करते हुए कहा हैह्लह्ल

''मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारम् विश्वतत्त्वानाम् वन्दे तद्गुण लब्धये।।''

अर्थात् जो मोक्षमार्ग के नेता हैं, कर्मरूपी पर्वतों के भेदन करने वाले हैं, विश्व के समस्त तत्त्वों के ज्ञाता हैं। उनके उन गुणों की प्राप्ति के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

किन्तु भिखारी परमात्मा के द्वार पर जाकर अपनी वासना माँगता है। जिस वासना को परमात्मा ने त्याग कर दिया है, वह त्याज्य उच्छिष्ट पदार्थ माँगता है; लेकिन भिखारी की इच्छा कभी भी पूरी नहीं होती है। ज्यों–ज्यों हम भिखारी को भीख देते जाते हैं, उसकी माँग त्यों–त्यों

बढ़ती जाती है। यदि भिखारी को आपका बेटा भीख देना बन्द कर दे और उपदेश देने लगे, हट्टे–कट्टे हो कुछ काम–धाम करो, आगे बढ़ो इत्यादि। वह भिखारी आपके चरणों में गिड़गिड़ाता है। वर्षों पुरानी परम्पराओं की दुहाई देता है, पर कब तक यह होता है, थोड़े दिन बाद वह भी अपना रास्ता बदलकर दूसरी जगह चला जाता है। ठीक ऐसे ही इन्द्रियाँ हैं, जिनकी औकात भिखारी से ज्यादा नहीं है। दृढ़ संकल्प एवं आत्म–विकास की चाह रखकर हम पतन की राह से बचकर भगवान महावीर की राह पर चल सकते हैं और अहिंसा की उपासना कर सकते हैं।

भगवान महावीर की पहचान बाहरी वैभव या चमत्कार से नहीं है। वे सर्वदेशिक व सार्वकालिक कहलाये, वे अपनी चित्त–वृत्तियों से आगे बढ़कर युद्धकर और अन्तःकषायों को परास्त कर विजयी बने। इस आत्म देवत्व के कारण वे महावीर कहलाये। अंधकार तो अज्ञान और मोह होता है। भगवान महावीर के भीतर से मोह और अज्ञान का अंधेरा समाप्त हो जाने से वे सार्वकालिक बन गये।

भगवान महावीर की खोज अनिन्द्रयमूलक थी, इन्द्रियजनित नहीं। इन्द्रियों का सम्बन्ध बाहरी पदार्थों से है। विज्ञान की सारी खोज पदार्थों से जुड़ी है। विज्ञान शरीर और मन को लेकर मूल तत्त्वों तक फैला है जबकि अनिन्द्रय की खोज वीतराग पर टिकी है। वह आध्यात्म की यात्रा है, वह आत्मानुधान है। वीतराग विज्ञान के हिमालय से समता की पावन गंगा अवतरित होती है। उस गंगा को बुलाने के लिए आत्म–पुरुषार्थ की भागीरथी चाहिए, रत्नत्रय की त्रिवेणी चाहिए।

जीवन–मृत्यु में, जय–पराजय में, सुख–दुःख में प्रशंसा और निन्दा में समताशील बने रहना। यह वीतराग विज्ञान का करिश्मा हो सकता है। 'वीतराग विज्ञान' अद्भुत शब्द है, महावीर की दिव्यध्वनि से निकला हुआ सत्य है। वीतरागता एक सिद्धान्त, दर्शन है। उसके साथ विज्ञान जुड़ जाने में उसमें क्रियात्म प्रयोग जुड़ गया। अपने जीवन में वीतराग भाव झलकने लगे, जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब झलकता है।

व्यक्ति यदि अपने अज्ञात कर्मों के कारण सांसारिक बन्धन में दुःखों को भोग रहा है तो सत्कर्मों के कारण सुखी भी हो सकता है। इतना ही नहीं उदय में आने वाले साता–असाता कर्मों में समता रखकर इन्द्रिय विजय की साधना कर अंबर तले दिगम्बर होकर राग–द्वेष को जीतकर कर्म–विजेता बनकर स्वयं परमात्मा बन सकता है।

महावीर की दिव्यदेशना मानवीय मूल्यों के संरक्षण/संवर्धन के लिए भारत वसुन्धरा पर हुई थी। जिनकी देशना में समता, सहिष्णुता, सह–अस्तित्व, संयम, स्वतंत्रता के पंचशील सूत्र उद्भाषित हुए थे, जो सर्वदेशिक/सार्वकालिक उस समय में थे जब दिव्यध्वनि से अवतरित हुए थे। उससे कहीं अधिक आज भी हैं।

समताह्ह यह प्रकृति का अवदान है इसलिए महावीर का नैसर्गिक पुरुष द्वारा खोज पाना मुश्किल है। उनमें आकाश सी निरालम्बता और तरुवर सी नैसर्गिकता थी जैसे प्रकृति ने उन्हें अवतरित किया हो। आवरण उन्हें स्वीकार ही नहीं हुआ। उनका दिगम्बरत्व/वीतराग प्रकृति की हकीकत थी। जैसे प्रकृति में छिपाने को कुछ भी नहीं है, वैसे महावीर निर्भय थे।

''जीविय मरणे लाहालाहे, संयोग विप्पजोगे य,
बंधुरिय सुह दुक्खादो, समदा सामायियं णाम।''

जीवन में मरण में, लाभ में अलाभ में, संयोग में वियोग में, शत्रु में मित्र में, शुभ में अशुभ में, काँच में कंचन में हमेशा समता भाव रहे बस यही सामायिक है। समता का दूसरा नाम सामायिक भी है। समता जीवन की मौलिकता है, उसकी प्रकृति है जबकि विषमता उसकी विकृति है। महावीर का दिव्यसंदेश विषमता से बचने का रहा। समता की पावन गंगा के दो फूल हैं– सहिष्णुता और सह–अस्तित्व।

सहिष्णुताह्न साधना चाहे अणुव्रत पालन की हो या महाव्रत के अनुशीलन की हो। अनुशासन बाहरी हो या भीतरी, सहिष्णुता उसकी प्राथमिक शर्त है। उपसर्ग सहिष्णुता के मित्र बन जाते हैं। श्रमण साधना में 22 परिषह कहे गए। सहिष्णुता की ढाल से परिषह का आक्रमण झेला जा सकता है। समता की फसल में सहिष्णुता पैदा होती है। विवेक से सहिष्णुता को बल मिलता है और सहिष्णुता से सह–अस्तित्व की अनुधारणा का विकास भी होता है।

सह–अस्तित्वह्न सह–अस्तित्व के गर्भ में अनाग्रह के बीज छिपे रहते हैं। वस्ततुः संघर्ष का जनक हमारी आग्रह वृत्ति है। आग्रह वृत्ति सत्–असत् और हेय–उपादेय को नहीं स्वार्थ को देखती है। आग्रह वृत्ति से मिथ्यात्व को बल मिलता है और जहाँ मिथ्यात्व है वहाँ अविवेक, संघर्ष और युद्ध रचता है।

स्याद्वाद और अनेकान्त के आलोक ने सह–अस्तित्व को प्राण दिये। सह–अस्तित्व के आँगन में **'परस्परोग्रहो जीवनाम्'** का अमर

सूत्र पुष्प बनकर फूला–फला। प्रत्येक प्राणी सापेक्षता और सह–अस्तित्व से जुड़ा है। एक का उपकार दूसरों को उपकृत कर रहा है। इनके बिना न जीवन संभव और न जीवन का विकास है।

संयमह्न मनुष्य के पास ज्ञान का अनन्त भण्डार है। उसकी पकड़ में सब कुछ कैद हो रहा है, केवल स्वयं को नहीं पकड़ पा रहा है स्वयं को खोज नहीं पा रहा है। सही है जिसे पाना है, जो होना है, वह तुम्हारे भीतर ही है। संयम से उसे प्रकट किया जा सकता है। संयम जीवन की बुनियाद है; लेकिन नियम, व्रत, संयम, चारित्र ये सब प्रवचन की वस्तुएँ बन जाती हैं। इन पर सेमिनार आयोजित होने लगता है। जीवन में पूज्यता आती है– सम्यक्चारित्र और संयमाचरण से, संयम के अनुशीलन से कर्मों की पराधीनता कट सकती है और आत्मा अपनी मौलिकता में लौटती है।

स्वतंत्रताह्न मनुष्य अपनी वासना के कारण परतन्त्र, पराधीन है। अपनी कामनाओं का गुलाम है। उसकी अनन्त इच्छाओं/अभिलाषाओं के चक्रव्यूह ने आत्मा की स्वतंत्रता को ओझल बना दिया है। वह परतंत्र नहीं होना चाहता; परन्तु दूसरों का स्वामी बनकर उसे परतंत्र बनाये रखने में रस होता है। यही उसकी स्वतंत्रता को बाधित किये है।

जब तक इन्द्रियों की वासना से ऊपर नहीं उठेंगे। स्वतंत्रता कोसों दूर खड़ी रहेगी। आत्म–स्वातन्त्र्य की अवबोध धारणाएँ हमारी परतन्त्रता का ताना–बाना बनाती हैं। इस जाल से छुटकारा पाये बिना स्वतन्त्रता आकाश कुसुम है। इस पाप रूपी जाल से छुटकारा पाने के लिए हमें विशद भक्ति की आवश्यकता है।

* विशद आप महावीर बनो *

सत्य अहिंसा के प्रहरी बन, विशद आप महावीर बनो।
स्वर्ग बनाना है धरती तो, करुणा की तस्वीर बनो।।

जियो और जीने दो सबको, ऐसे सद् इंसान बनो।
सत्य अहिंसा शील व्रतों के, धारी तुम गुणवान बनो।।
मधुर-मधुर शब्दों के द्वारा, सबके मन को हर्षाओ।
रत्नत्रय के मोती बन्धु, सारे जग में बरसाओ।।
पीड़ित की पीड़ा को हर लो, खुशियों की जागीर बनो।
सत्य.....।।1।।

पर की पीड़ा अपने जैसी, स्वयं आप महसूस करो।
इंसां बन करके तुम जीना, मन को मत मनहूस करो।।
भारत करुणा की धरती है, थोड़ा सा तो ध्यान करो।
हर प्राणी को जीवन प्यारा, उनको जीवन दान करो।।
देश धर्म के तुम रक्षक हो, रक्षा की प्राचीर बनो।
सत्य.....।।12।।

मानव हो तुम मानवता का, बन्धु मत संहार करो।।
आर्य पुरुष हो आर्य संस्कृति, के ऊपर न वार करो।
मानवता है बड़ी मनुज से, इसका भी सम्मान करो।।
पर पीड़ा को अपने जैसी, ही अनुभव से भान करो।
जीवन की अभिलाषा दे दो, लोगों की तकदीर बनो।
सत्य.....।।3।।

शूल बिछे हों यदि राह में, राह को शूल विहीन करो।
नहीं कभी भी किसी जीव को, बन्धु तुम गमगीन करो।।
मैत्री भाव भरो अन्तर में, सब जीवों को माफ करो।
आँखों में जिसके आँसू हों, उनके आँसू साफ करो।।
घाव किसी को कभी न देना, मल्हम की तासीर बनो।
सत्य.....।।4।।

करना पर उपकार सदा ही, रखना मत फल की आशा।
हृदय द्रवित कर दे जन-जन का, बोलो तुम ऐसी भाषा।।
बाग लगाना है धरती पर, माली तुम स्वमेव बनो।
स्वर्ग बनाना है भारत तो, 'विशद' स्वयं भी देव बनो।।
कलियाँ यदि खिलाना चाहो, सागर से गम्भीर बनो।
सत्य.....।।5।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

जो इस धरा पर सत्य अहिंसा की तस्वीर हो गये।
जो संसार तारक, भवसिन्धु के तीर हो गये।।
जियो और जीने दो का, 'विशद' नारा गुंजाया धरा पर।
ऐसे महान युग प्रवर्तक, भगवान महावीर हो गये।।

भगवान महावीर इस धरती पर नहीं, इसका हमें गम है।
उनकी यादगार में हमारे, नयन भी नम हैं।।
महावीर को खोकर भी, विशद हम खुश हैं।
महावीर के सिद्धान्त, हमारे पास हैं क्या यह कम है।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

नागपंचमी

(सद्भावना का पर्व)

आज नागपंचमी है। चारों ओर नागों को कंधे पर लटकाए हुए नाथ द्वार–द्वार पर नचाकर लोगों को नाग का दर्शन दिखा रहे हैं और उन्हें दूध पिलाते हैं। लोग नाग के स्वामी नाथ के लिए द्रव्य दे रहे हैं। कितना बदल गया है आज का जमाना। अज्ञानता की भी हद होती है। शायद वह कहावत ठीक ही बनी है–**''घर में आए नाग न पूजें वामी पूजन जाँय''।** यदि किसी के घर में नाग निकल आता है तो जिस किसी उपाय से उसे बाहर निकालने का प्रयास करते हैं। लोग चाहे नाथ के द्वारा पकड़कर हो या नाश (मिर्च जलाकर उसके धुआँ से) से हो अथवा विनाश (प्राणघात) कर हो। यदि बिल में घुसा है तो गर्म तेल डालकर उसे भून दिया जाता है या लाठी और गोली के द्वारा मौत के घाट उतार दिया जाता है; किन्तु आज के दिन यदि सर्प न मिले तो वामी पर जाकर उसकी पूजा करते हैं।

वास्तविक बात तो है कि नाग को दूध पिलाना, उसके जहर को बढ़ाना है और जब जहर बढ़ेगा तो अवश्य ही किसी न किसी के ऊपर उतरेगा ही। यद्यपि भगवान नेमिनाथ और भगवान पार्श्वनाथ भी अन्य मतावलम्बियों के बीच शेषनाग अवतारी के रूप में प्रसिद्ध हैं। भगवान पार्श्वनाथ के नाग (सर्प) चिह्न होने से आप नागेश्वर कहलाते हैं। नागपंचमी पर्व भगवान पार्श्वनाथ की पूजा से आरम्भ होकर वर्तमान में विकृत स्वरूप में (मिथ्यात्व रूप में) अन्य मतों में प्रसिद्ध है। वामी में भगवान पार्श्वनाथ, भगवान नेमिनाथ की पूजा होते–होते बाद में वामी की ही पूजा की जाने लगी।

नागपूजा (धरणेन्द्र पद्मावती नामक नागों की पूजा) का प्रचलन भगवान पार्श्वनाथ के काल से प्रारम्भ हुआ है। पार्श्वनाथ से पूर्व नागपूजा प्रचलित थी। इस प्रकार का उल्लेख किसी पुराण ग्रन्थ में नहीं मिलता है। हम पार्श्वनाथ के जीवन पर गहराई से विचार करें तो इसका उत्तर सहज ही मिल जाता है। पार्श्वनाथ काशी के राजकुमार थे। उनके प्रति जनता में अपार प्रेम और श्रद्धा थी। जनता उन्हें अपना आराध्य मानती थी। संवरदेव ने जब तप करते समय उपसर्ग किया था तब धरणेन्द्र–पद्मावती ने नाग का रूप धारण करके उनकी रक्षा की थी। ऐसा भोली–भाली जनता समझती थी। कृतज्ञता प्रकट करने के लिए जनता उन नागों को पूजने लगी। वहीं से प्रारम्भ होकर नागपूजा देश के अन्य भागों में फैल गई। वस्तुतः कमठ के उपसर्गों को सहन करते हुए पार्श्वनाथ केवलज्ञान को प्राप्त हुए। केवलज्ञान के अतिशय के प्रभाव से उनके तत्काल समस्त उपसर्ग दूर हो गये थे; किन्तु अज्ञानता वश लोग धरणेन्द्र–पद्मावती को उपसर्ग दूर करने वाला समझकर उनकी ही पूजा करने लगे। इस तरह एक ओर तो जनता ने उनके नागरूप की पूजा प्रारम्भ की तो दूसरी ओर उनके यक्ष धरणेन्द्र–पद्मावती की पूजा की जाने लगी।

जिस प्रकार इमली की हवा से स्वास्थ्य बिगड़ता है और नीम की हवा से सुधरता है। इसी तरह गाली देने से और कटुवचन बोलने से मन, वचन एवं शरीर का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। वचन का घाव बड़ा विचित्र होता है। तलवार का घाव तो भर जाता है पर जबान का घाव भरना बड़ा मुश्किल है। कहा भी हैह्न

छुरी का, तीर का, तलवार का तो भरा।
लगा जो जख्म जुबां का रहा हमेशा हरा।।

मधुर जबाव मृदु व्यवहार से स्वयं तो व्यक्ति स्वस्थ रहता ही है और को भी स्वस्थ बना देता है। आज का दिन हमारे लिए मिष्ठ वचन बोलने की भी शिक्षा देता है। नागपंचमी से सम्बन्धित लोक कथाओं में से एक लोक कथा यह है किह्लह्ल

एक दिन एक किसान अपने खेत में हल चला रहा था। अकस्मात् दुर्भाग्यवश उसके हल से भूमिगत साँप के बच्चे हताहत हो गये। जब साँप को पता चला तो अत्यन्त रुष्ट होकर फुंकारता हुआ रोषारुण अभागे किसान के घर पर आया और किसान के दुध–मुँहे बच्चों को डस गया। इस भीषण कृत्य से समूचे गाँव में आतंक फैल गया। ग्रामवासियों द्वारा कृत प्रतिहिंसा के असफल प्रयत्न आग में घृत बनकर आग को और अधिक भभकाने लगे। ग्रामवासी साँप को मारने के लिए उद्यत हो रहे थे तो साँप उनसे बदला लेने में सतत् प्रयत्नरत था।

ऐसे भीषण समय में किसान की प्रतिभावती कन्या भावी अनिष्ट को भाँपकर थर–थरा उठी। उसकी सुतीक्ष्ण मेधा ने अनिष्ट निवारण का रास्ता खोज निकाला। उस मेधावती कन्या ने सोचा, जो काम कठोरता से नहीं होते, वे काम मधुर व्यवहार से तत्क्षण बन जाते हैं। अतः मैं अपने विनम्र व्यवहार से नागराज को शांत करूँ, इसमें ही हम सबका कल्याण है।

उस प्रतिभावती कन्या ने थाल में भीनी–भीनी सुगन्ध देने वाले इत्र जैसे सुगन्धित पदार्थों को रखकर फुंकारते हुए रुष्टमान नागदेव को मधुर संगीत में आरती उतारी तथा मेवा मिश्रित दूध के प्याले को नागदेव के सामने

रखा। उसके इस विनम्र व्यवहार व प्रेम से पूरित मधुर शब्दों ने नागराज को बहुत प्रभावित किया। परम प्रसन्न और शांत नागदेव ने दूध पीते हुए कहा– पुत्री ! तेरी सूझ–बूझ पर मैं परम प्रसन्न हूँ, अतः यथेष्ट वर माँग सकते हैं।

विनयवती कन्या ने अनुनय की– हे देव ! मेरे पिता द्वारा अज्ञात में हुए अपराध की माफी दीजिए और मेरी माता के दुलारे इन कुलदीपकों को जीवनदान दीजिए। वचनबद्ध मणिधर नाग ने अपनी अनमोल मणि प्रदान करते हुए कहा– सुशीले ! सुखी हो जाओ, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।

यह लो मेरी इस अनमोल मणि को, इसे पानी में धोकर अपने सहोदरों को पिला दो। तत्क्षण विष उतर जायेगा। सच है– हमारी सद्भावना, अणुतरंगे, वातावरण को अवश्य तरंगित करतीं हैं। जिसका प्रभाव निःसंदेह प्रतिद्वंदी पर पड़े बिना नहीं रह सकता है। तीर्थंकरों के समवशरण एवं महर्षियों के आश्रमों में सिंह और बकरी, बिल्ली और चूहा जैसे जन्मजात बैरी युगलों के बैर विस्मरण की बात सिद्ध करती है कि एक समता के सागर की सर्वोच्च सद्भावना का कितना जबरदस्त प्रभाव हिंसक जानवरों पर भी पड़ता है। अमेरिकन ई.आर.रूट ने सत्य कहा है–**''मधुमक्खियों को अपनी सद्भावना का निश्चय करा दो, फिर उनके साथ बिल्ली के बच्चों की तरह खेल लो।''** नागपंचमी के पर्व से सम्बन्धित प्रचलित अनेकों कथाओं में इस पौराणिक कथा द्वारा अपनी सद्भावना बढ़ाने की प्रेरणा लेनी चाहिए।

कई बार देखा जाता है कि लोग नाथ को पैसे देकर सर्प को अपने बच्चों के गले में डलवाते हैं। इसका रहस्य यही हो सकता है कि यह भी हमारे बन्धु हैं, मित्र हैं। इन्हें सताना नहीं चाहिए। सद्भावना प्रदर्शित

करने के लिए तो शंकरजी को देखा जाता है। उन्होंने अपने गले में सर्प धारण किए तथा भगवान पार्श्वनाथ और बाहुबली के जीवन चरित्र भी हमारे जीवन में प्रेरणा प्रदान करते हैं। अतिशय क्षेत्र देवगढ़, क्षेत्रपालजी ललितपुर में तथा चंदेरी में बाहुबली भगवान की मूर्ति पर सर्प, बिच्छू, छिपकली इत्यादि अंकित हैं। जो विशेष सद्भावना और साधना का साक्षात् प्रमाण है। सद्भावनाहीन इंसान मुर्दा की भाँति हैं। कहा भी हैह्लह्ल

जा घर प्रेम न संचारे, ता घर जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, श्वांस लेत बिन प्राण।।

नागपंचमी पर्व पर जगह–जगह लोग अखाड़ा तैयार करते हैं और कुश्ती प्रतियोगिता इत्यादि भी होती है। जो आपसी सद्भावना, भाईचारे, मेल–मिलाप की सूचक है। यदि हम वास्तविक अर्थ पर पहुँचें तो आज नागपंचमी यानि की मिथ्यात्वरूपी नाग जो पाँच भेद रूप में है (विपरीत, एकान्त, विनय, संशय, अज्ञान) उसे नाश करके सम्यक्त्व पाने हेतु प्रभु पार्श्वनाथ की पूजा की गई है। जिसने मिथ्यात्वरूपी नाग का दमन कर दिया है। उसका वह नाग कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते हैं। यहाँ तक कि सुना जाता है कि नाग हमेशा मनुष्य से डरकर भागता है। कभी मनुष्य के पास नहीं आता। **''काले नाग से भी अधिक खतरनाक तो यह नर नाग होता है। नाग के काँटने वाले को तो मंत्र के द्वारा उसके जहर को दूर किया जा सकता है; किन्तु नर नाग के जहर को दूर करना इतना आसान नहीं है।''** किसी शायर ने कहा हैह्लह्ल

इन्सान के अन्दर आज, इतना जहर भर गया है।
आज तक सुनते आये साँप के काँटने से इंसान मर गया।

कि विषधरों का वंश भी उससे डर गया।
अब सुनेंगे इंसान के काटने से साँप मर गया है।।

या यों कहें कि नाग का जहर उतना खतरनाक नहीं है जितना कि मिथ्यात्व का जहर खतरनाक होता है अथवा यों कहा जाए कि नागपंचमी पंचमी को ही क्यों मनाई जाती है तो कहा जा सकता है कि सबसे बड़ा नाग पाप है। वह पाँच हैं– हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह। इनका शमन करने हेतु प्रभु चरणों का सहारा लिया जाता है। लोग व्रत, उपवास करते हैं और पापों का परित्याग करते हैं।

बहुत पहले एक स्थान पर पुस्तक में पढ़ा था। एक बार नागराज यमराज के पास पहुँचे और जाकर निवेदन किया कि हम बहुत दुःखी हैं; क्योंकि हमारे पास कोई भी नहीं आता है और हम किसी के पास पहुँच जाते हैं तो लोग तुरन्त ही भाग जाते हैं। हमें किसी का सहयोग नहीं मिलता है, हम क्या करें? तब यमराज ने कहा– भाई आप लोगों को काटते हैं अतः सभी आपसे डरते हैं। आप लोगों को काँटना बन्द कर दीजिए, लोग आपके पास आने लगेंगे। नागराज ने कहा– ठीक है, हम काटना बन्द कर रहे हैं और काँटना बन्द करते ही देखा कि लोग नागराज के पास आने लगे और यहाँ तक कि उसके ऊपर भी पैर रख देते, बच्चे उनके ऊपर खड़े होकर नाचने लगे। कोई उठाकर फेंकता तो कोई उठाकर चकरी की तरह घुमा देता। आखिर दुःखी होकर नागराज पुनः यमराज के पास पहुँचे। महाराज हम बहुत परेशान हैं, रक्षा कीजिए। तब यमराज ने पूछा– क्या बात है, अब तो आपके पास लोग आते हैं ना, आपके साथ क्रीड़ा करते हैं। फिर क्यों परेशान हो? क्या बात हो गई? तब नागराज ने अपनी सारी रामकहानी सुना दी और शिकायती लहजे में कहा कि आपने

हमसे कहा था कि तुम काँटना बंद कर दो तो अब हमारी ये हालत हो रही है– लोग हमारे ऊपर पैर रख रहे हैं, हमारा जीना हराम कर रहे हैं। तब यमराज ने बहुत अच्छी तरह बात कही– भाई हमने काँटने के लिए मना किया था, फुंकारने के लिए तो मना नहीं किया था। यदि तुम फुंकारते रहते तो लोग तुमसे भयभीत बने रहते और यह स्थिति नहीं बन पाती।।

प्यारे भाई ! इंसान को नाग से भयभीत रहने के लिए भगवान पार्श्वनाथ ने शिक्षा दी कि आप हमेशा पापों से डरते रहना तो आपके लिए अल्पसमय में ही पंचम गति की प्राप्ति हो जाएगी और नागपंचमी मनानी सार्थक हो जाएगी।

कविता

जिन्दगी में हर किसी को, मुस्कराना चाहिए।
गीत होठों पे जो आए, गुनगुनाना चाहिए।।
हल नहीं निकला है कोई, दुश्मनी से आज तक।
दोस्ती का भाव दिल में, अब जगाना चाहिए।।
है वही इन्सान जो, खुद आँधियों से लड़ रहा।
मुश्किलों का सामना, साहस से करना चाहिए।।
नफरत से भरे दरिया में, डूब न जाये कोई।
डूबते हर शक्स को, साहिल पे लाना चाहिए।।
हौंसला है इतना कि, तकदीर बदल सकते हो।
अन्दर जोश तुम्हारे है बहुत, कुछ कर दिखाना चाहिये।।
नाग–पञ्चमी पर्व शिक्षा, दे रहा भाईचारे का।
अय 'विशद' निज शत्रु को भी, गले लगाना चाहिए।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

मुकुट सप्तमी

(निर्माण से निर्वाण तक)

प्यारे बंधुओ ! आज मोक्ष सप्तमी है। आज एक नई चेतना जागृत हुई। देखा पुरानी बजाजी का बड़ा हॉल छोटा पड़ गया और होता भी ऐसा ही है। जब सूर्य उदय होता है, किरणें फैलती हैं तो चारों तरफ प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। सूर्य के उदय होने पर अंधकार का विनाश हो जाता है। यह शाश्वत् सत्य है कि सूर्य का उदय पूर्व दिशा से ही होता है और अस्त पश्चिम दिशा में होता है; किन्तु सारे देश को चारों ओर से प्रकाशित करता है।

महापुरुष जिस शिला पर, जिस जगह पर, जिस स्थान से निकल जाते हैं वहीं पर अपनी आभा बिखेर जाते हैं, वहीं महापुरुष अपना स्थान बना लेते हैं। लोग उस स्थान की धूलि को तो अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं।

फकीरों से न पूछो, ठिकाना उनके रहने का।
जहाँ आसन जमा बैठे, वहीं होता मकां उनका।।

आज का दिन कितना महत्त्वपूर्ण है। जहाँ दुनिया युवावस्था में भोग की ओर भागती है, किन्तु ऐसी स्थिति में पार्श्वकुमार को युवावस्था में जागृति हुई। प्राप्त हुये सांसारिक साधन भी उन्हें नहीं भाये, वे संसार से उदासीन रहे। भोगों में उनसे सुख–शांति की लहर नहीं आई। अंशमात्र सुख नहीं मिलता। तीस वर्ष की भरी जवानी में घर छोड़कर वन की ओर चल दिये। सर्दी, गर्मी, वर्षा सभी सहन करते हुए उत्कृष्ट तप तपने लगे। तीर्थंकरों में सबसे अधिक उपसर्ग हुए, उनमें सबसे पहले पार्श्वनाथ का नाम आता है। सोना जितना अधिक तपता है, उतना ही शुद्ध होता है।

आज देखा जाये तो प्रत्येक मंदिर में पार्श्वनाथ की प्रतिमा अवश्य ही मिलती है। किसी को पहचाने या ना पहचाने पारस बाबा को, दूर से ही पहचान लेते हैं। विश्व के कोने–कोने में पार्श्वनाथ की महिमा छाई हुई है। सौ वर्ष की उम्र में से तीस वर्ष की उम्र युवावस्था तक गृह में बिता दिया तथा चार माह तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया और चार माह कम सत्तर वर्ष तक केवली अवस्था में रहकर दिव्यदेशना देते रहे। भारत के कई क्षेत्रों में प्रभु पार्श्वनाथ स्वामी ने अपनी दिव्य देशना से भव्य जीवों का कल्याण किया। लोग कहते हैं कि नैनागिर क्षेत्र पर पार्श्वनाथ स्वामी का समवशरण दो बार आया था। शिखरजी में बीस तीर्थंकरों की निर्वाण स्थली है, जिसमें पार्श्वनाथ टोंक बहुत ऊँची है; क्योंकि जो जितना ऊँचा उठता है उतना ही ऊँचाई को पाता है, उतना ही प्रसिद्धि प्राप्त करता है।

आज हम अपने आप को खुशनसीब कहें या बदनसीब। दुःख इस बात का है, प्रभु का साया सिर पर से उठ गया और खुशी इस बात की कि उन्होंने मुक्ति पथ को कायम रखा, निर्वाण को प्राप्त किया। एक ओर आँसू आते हैं, दुःख होता है कि आप्त हमारे बीच से चले गये और दूसरी ओर प्रसन्नता होती है कि हमारे आराध्य ने संसार के जन्म–मरण के चक्कर से छूटकर मुक्ति–वधु को प्राप्त किया। यह ठीक उसी प्रकार है जब घर, परिवार के सदस्य गिरनारजी, सम्मेदशिखरजी जैसे तीर्थ–स्थली जाते हैं तो प्रसन्नता होती है कि भगवान की वंदना को जा रहे हैं। हम वहाँ तक नहीं पहुँच पा रहे हैं, हमारी नमोस्तु वहाँ तक पहुँच जाएगी और दूसरी ओर विरह का गम भी हो रहा है। भगवान की मुक्ति पर गम के बाद भी प्रसन्नता इस बात की है कि हमारे लिए जिनवाणी माँ देकर गये हैं। हम

और आप अगर पार्श्व बनना चाहते हैं तो उनका गुणगान कर त्रियोग से ध्यान करना होगा। यदि अपने आपको पारस का लाल (बेटा) कहलाना चाहते हो तो उनके बताये मार्ग पर चलना होगा।

गाय और सिंह को एक घाट, पर पानी पीने दो।
हे इंसान ! तुम खुद जिओ, और सबको जीने दो।।
पार्श्व प्रभु की दिव्यध्वनि से, अपना हृदय सजा लो।
पार्श्वमणि है पार्श्व प्रभु जी, जीवन सफल बना लो।।
पार्श्व प्रभु की चरण धूलि से, जीवन विशद सजाना है।
पार्श्व प्रभु के गुणों को गाकर, स्वयं पार्श्व हो जाना है।।

इस सम्बन्ध में पार्श्वपुराण से कथन आया है। राजा अरविन्द के मंत्री विश्वभूति के दो पुत्र थे– कमठ और मरुभूति। कमठ क्रूर, व्यसनी, बड़ा दुष्ट था; किन्तु मरुभूति (छोटा पुत्र) योग्य, हर प्रकार की विद्या में निपुण था। एक दिन मुनिराज का समागम पाकर मंत्री संसार, शरीर, भोगों से निवृत्त होकर जिनदीक्षा लेने को उद्यत हुआ; किन्तु राजा के समक्ष एक समस्या थी कि अब प्रधानमंत्री अर्थात् मंत्री का पद किसको दिया जाए। पहले बड़े पुत्र कमठ को नियम से मंत्री पद दिया जाना था; किन्तु व्यसनी, दुराचारी होने से राजा ने उसे मंत्रीपद नहीं दिया और मंत्रीपद छोटे पुत्र मरुभूति को दिया।

कुछ समय पश्चात् पड़ौसी राजा का युद्ध के लिए बिगुल बजा। ऐसी स्थिति में राजा राज्य की व्यवस्था कमठ के लिए सौंपकर युद्ध के लिये चले गये। लौटकर आये तो देखा राज्य में हाहाकार मचा था। उसने बहुत अत्याचार किये थे, यहाँ तक कि छोटे भाई की पत्नी को भी नहीं छोड़ा। उसकी आबरू पर भी हाथ फेरने को उद्धत हो गया था। इतना सब कुछ

होते हुए भी मरुभूति ने राजा से विनम्र प्रार्थना की– मेरे भाई ने बहुत अत्याचार किये हैं, फिर भी उन्हें प्राणदण्ड मत देना। राजा ने उसकी प्रार्थना पर विचार करके दुर्व्यसनी कमठ के लिए सिर–मुण्डन कर, मुँह काला करके, झाड़ू का मुकुट एवं जूतों का हार पहनाकर गधे पर बैठाकर नगर से बाहर निकाल दिया।

कमठ अपमान के कारण नगर छोड़कर ऋषि आश्रम में कुतप करने लगा। कभी तो वह हाथों में शिला लेकर तपस्या करता तो कभी पञ्चाग्नि से तपस्या करने लगा। मरुभूति को जब पता चला तो उन्हें अपने बड़े भाई के हालात पर बहुत दुःख हुआ। उसने सोचा कि भाई यदि सम्यक्तप करता तो ठीक था। उसने सोचा, उसे समझाने की कोशिश करनी चाहिए; किन्तु राजा ने मना किया कि दुष्टों को समझाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर भी मरुभूति दयाभावपूर्वक कमठ को समझाने गये कि शायद समझ जाये। जैसे ही मरुभूति कमठ के पास पहुँचे तो कमठ ने छोटे भाई मरुभूति के लिए अपने अपमान का कारण जानकर मरुभूति के ऊपर शिला पटक दी। मरुभूति संक्लेश परिणाम से, मरकर हाथी हुआ।

जीव तो वही है। अन्तर मात्र दृष्टि बदलने का है। दृष्टि के बदलते ही सृष्टि बदल जाती है। जिसकी दृष्टि जैसी होती है उसे वैसा ही दिखता है। सही दृष्टि वाला गाली में गीत खोज लेता है और गलत दृष्टि वाला गीत में गाली खोज लेता है। एक बार एक सेठजी बहुत ही सज्जन धर्मपरायण थे और उनकी पत्नी भौतिकतावादी भोगों में आनन्द मनाने वाली थी। किसी भी बाहर के लोगों की बात सुनती तो तड़प जाती, कहती– हमारे लिए तो ऐसे मूरख चंद मिले कि कहीं जाने–आने का नाम नहीं लेते, सुबह–शाम

मंदिर में बैठे रहते। एक दिन मुनिराज का आगमन हुआ तो सेठजी ने कहा– आज रात्रि में हम मन्दिर में रुकेंगे, तुम इंतजार नहीं करना। यह सुनकर सेठानी भड़ककर बोली– जाओ वहीं पर दीक्षा लेकर रहो। कहीं घूमने–घामने की बात नहीं और मन्दिर में रहेंगे, जानवर कहीं का। सेठजी चुपचाप मन्दिर चले जाते हैं। इधर सेठानी घर में थी, तभी पड़ोसन को उसका पति बिना किसी कारण पिटाई करके बाजार चला गया, वह रोते हुए उसके पास आकर आप बीती कहने लगी। तब सेठानी को अपनी बात पर पछतावा हुआ, मैंने गाली भी दे दी फिर भी मेरे स्वामी ने कुछ नहीं कहा, कितने अच्छे हैं, अब तो मैं उनसे क्षमा माँगूगी। सुबह सेठजी के आते ही उन्हें भोजन कराया और शांतभाव से बैठने पर पूछा– कल मैंने आपके लिए बुरा–भला कह दिया था, तब आपको बुरा नहीं लगा था क्या? सेठजी– आपने क्या बुरा कहा? तब सेठानी ने कहा– मैंने इतनी बड़ी गाली दी थी और आप कह रहे हैं, क्या कहा था। तब सेठजी ने कहा– नहीं हमको तो कोई गाली नहीं दी। तब सेठानी ने कहा– कल मैंने आपको जानवर कह दिया था। तब सेठजी ने कहा– सीधी सी तो बात है 'जान' का अर्थ है पत्नी, आपने फिल्मों में सुना होगा हीरो, हीरोइन से कहा करता है– हाय मेरी जान ! और वर का अर्थ है– पति, आपको पता होगा जब अपनी शादी हुई थी तो निमन्त्रण कार्ड में लिखा वर–वधु का परिणय होगा। अब दोनों को मिला देने पर जानवर बना की नहीं? शब्द तो एक ही है, अर्थ लगाने से गाली भी गीत में बदल जाती है। जिसकी दशा सुधर गई, वह सही दिशा को प्राप्त कर ही लेता है। दिशा को अपनी जगह सही करना। दशा को परिवर्तित करना है। कहा भी है– **जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि'**। घटना को सुनकर राजा संसार की उदासीनता

का चिंतन करते हुए मुनि हो गये। धर्मध्यान रूपी अग्नि से कर्मरूपी कचरे को जलाने गये। एक दिन मुनि ध्यान में लीन थे तभी हाथी (मरुभूति का जीव) उनके पास जाकर शांतभाव में लीन होकर एकटक मुनिराज को देखने लगा। सिर झुकाकर घुटने टेककर खड़ा हो गया। उसे देखते ही देखते जाति-स्मरण हो गया। जिस प्रकार फिल्म के किसी विशेष पात्र को देखकर फिल्म की सारी की सारी घटनाएँ स्मरण में आ जातीं हैं उसी तरह उसे स्मरण हो गया कि ये तो हमारे पूर्व के राजा थे। ध्यान के बाद मुनिराज ने समाधिरस्तु आशीर्वाद दिया। मुनिराज की अमृतमयी वाणी को सुनकर उसकी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू बह निकले। मुनिराज समझाने लगे कि हे गजराज ! तेरी यह स्थिति खोटे परिणामों से हुई है। अब तो समय रहते हुए अपना उत्थान करो। मुनिराज के वचन सुनकर उसी समय हाथी ने अणुव्रत धारण कर लिये और व्रती बन गया। व्रतरहित मनुष्य तो पशु की भाँति है। एक हाथी पशु होकर भी श्रावक के व्रत धारण कर सकते। आज का मनुष्य पशु से भी बदत्तर है। आज मानव रात-दिन इन्द्रियों का दास बना है। कषायों, पापों में ही जीवन व्यतीत कर रहा है। अपने कर्त्तव्यों को भूल रहा है, इससे अच्छा तो पशु है। हाथी ने यथायोग्य व्रत धारण किये और अपना जीवन सफल किया। हम भी हाथी की भाँति व्रत-नियम-संयम लेकर अपना उत्थान कर सकते हैं। कहा भी हैह्लह्ल

सुलझे पशु उपदेश सुन, क्यों न सुलझे पुमान।
केहरि से हुए वीर जिन, गज पारस भगवान।।

जिसकी दृष्टि बदल गयी उसकी सृष्टि बदल गई। आवश्यकता मात्र दृष्टि बदलने की है।

नजरों के बदलते ही नजारे बदल गये।
किश्ती ने बदला रुख कि किनारे बदल गये।।

व्रतों को धारण करके वह गज से गजराज बन गया। समाधिपूर्वक मरण करके वह स्वर्ग में देव हुआ और आठ भव तक क्रमशः राजा का पुत्र होकर स्वर्ग गया। पुनः स्वर्गादि के सुख भोगकर दसवें भव में तीर्थंकर पदधारी अश्वसेन राजा का पुत्र हुआ। दूसरी ओर कमठ संक्लेश परिणाम से मरकर नरक गया। वहाँ अनेक दुःखों को सहन करते हुए वहाँ से क्रूर पशु, अजगर, सर्प, शेर, बहेलिया आदि बना। दस भव तक बैर चला, कमठ को जब मनुष्य का भव मिला तो उसने कुतप धारण किया। इसलिए पूजन में कथन आया हैह्लह्ल

दस भव तक जिसने बैर किया, पीड़ायें देकर मनमानी।
फिर हार मानकर चरणों में, झुक गया स्वयं वह अभिमानी।।

कमठ हर भव में अग्नि बना रहा; किन्तु पारस शीतल जल बने रहे। कमठ शूल था तो पारस फूल थे। कमठ अग्निमय सूर्य थे तो पारस चन्द्रमा बने हुए थे। कमठ का जीव तापसरूप में पार्श्वकुमार का नाना था। नाना कुतप कर रहे थे। उसी समय बालक पार्श्वनाथ वहाँ से निकले। तापस को देखकर करुणामयी वाणी से बोले- हे तापस ! यह अग्नि जलाकर क्या कर रहे हो? उसने कहा- तप कर रहे हैं। तुम तपसी नहीं, कुतपसी हो; क्योंकि तुम सम्यक् तप नहीं तप रहे हो। देखो ! इस अग्नि में कितने जीव जल रहे हैं। एक में तो पंचेन्द्रिय नाग-नागिन बैठे जल रहे हैं। तापसी ने पार्श्वकुमार को डाँटते हुए कहा- **कल का छोरा मुझे शिक्षा देने आया है।** जब तापसी नहीं माना तो कहा- यदि विश्वास नहीं

होता तो लकड़ी चीरकर देख लो। लकड़ी चीरी तो उसमें युगल नाग अधजले थे, अग्नि की लपट से तड़प रहे थे। पारसकुमार ने उन्हें णमोकार मंत्र सुनाया। णमोकार मंत्र को एक बार सच्चे हृदय से श्रवण करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। णमोकार मंत्र के प्रभाव से नाग–नागिन स्वर्ग में धरणेन्द्र–पद्मावती देव हो गये। कहा भी हैह्लह्ल

कृत्त्वा पाप सहस्त्राणि, हन्त्वा जंतु सतानि च।
अमुं मंत्रं समाराध्य, त्रियंचोऽपि शिवं गतः।।

पार्श्वकुमार का बचपन समाप्त हुआ। यौवन की दहलीज पर पैर रखा। युवा होते ही सभी जानते हैं, क्या होता है। एक से दो होते हैं, दो से चार। शादी की चर्चा हुई, माँ ने कितने स्वप्न संजोये थे– मेरा लाल दुनिया का राजा है, उसकी शादी होगी, एक सुंदर नई नवेली बहू आयेगी। जिसके आने से सारे नगर में खुशी छा जायेगी। अनेक प्रकार से स्वप्न संजोकर रखे थे; किन्तु स्वप्न तो स्वप्न ही होते हैं। कब समाप्त हो जाये कोई भरोसा नहीं। पार्श्वकुमार को शादी के लिये एक से एक सुन्दर 500 राजकुमारियाँ दिखाई गईं थीं, उन्होंने आँखें बन्द कर ली। देखा तक नहीं कि ये राजकुमारियाँ कैसी हैं? माँ ने यही सोचकर बुलाया था, किसी न किसी को पसंद कर लेगा; किन्तु पसंद करना तो दूर की बात है, आँख उठाकर ऊपर तक भी नहीं देखा। कुमारी किसे कहते हैं? ''कु+मारी'' कुमरण में ले जाने वाली को कुमारी कहते हैं इसलिए वैरागी पार्श्वकुमार ने उन्हें देखा तक नहीं जंगल की ओर चल दिये। समस्त राजसी आभूषणों को तृणवत समझकर त्याग दिया और जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर घोर तपश्चरण करने लगे।

तीर्थंकर भगवान क्षत्रिय थे। क्षत्रिय शब्द छत्री से बना है। छत्री रक्षा के लिये है, जो रक्षा करने वाले हों वह क्षत्रिय कहलाते हैं। एक बार कटंगी में मेरे से किसी युवक ने प्रश्न पूछाह्ल महाराज, जितने भी तीर्थंकर हुए सभी क्षत्रिय राजा ही क्यों होते हैं? ब्राह्मण, वैश्य आदि सामान्य क्यों नहीं हुए। प्रश्न बहुत ही अच्छा था, क्या आपके मन में ऐसा प्रश्न उठा। यदि नहीं उठा तो कम से कम उत्तर ग्रहण करने की कोशिश अवश्य करना। मैंने कहा– जिस प्रकार आप गेहूँ, चना आदि बोते हैं, आप तो मात्र गेहूँ चाहते हैं; किन्तु गेहूँ के साथ आपको भूसा अवश्य ही प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार तीर्थंकर पूर्वभव में मुनि बनकर मोक्ष प्राप्ति की भावना से साधना करते हैं। उस समय के पुण्य से तीर्थंकरों के लिये राजवैभव, धन–संपत्ति भूसा के समान प्राप्त हो जाते हैं। उनका मूल लक्ष्य तो **'मोक्ष'** प्राप्त करना होता है। क्षत्रिय के बारे में कहा हैह्लह्ल

क्षत्रिय को यह होय न कर्मा, क्षत्रिय का है उत्तम धर्मा।
क्षत कहिये पीड़ा को नामा, पर पीड़ा हर जिनका कामा।।
क्षत्रिय दुर्बल को न मारे, क्षत्रिय को पर पीड़ा हारे।
माँस खाय तो क्षत्रिय कैसो, वह तो दुष्ट अहेरी जैसो।।
अर जो अहेरी तजे अहेरा, दयापाल ह्वै जिनतम हेरा।
तो वह पावे उत्तम लोका, सबको जीव दया सुख नौका।।

क्षत्रिय प्रत्येक प्राणी मात्र का कल्याण करने वाला होता है। जो कल्याण के पथ पर पहले स्वयं चले बाद में अन्य लोगों को चलने का रास्ता दिखाये वह क्षत्रिय है।

यहाँ कथन चल रहा था कि पारसनाथ तपश्चरण में लीन थे। चारों

तरफ ख्याति फैल गई; किन्तु कमठ का बैर दूर न हुआ। कमठ का जीव संवर देव हुआ। जहाँ मुनि ध्यान में लीन थे। वहीं से संवर देव विमान से जा रहा था कि विमान रुक गया। यत्र-तत्र देखा, कुछ दिखाई नहीं दिया। नीचे देखा तो पार्श्वमुनि ध्यान में लीन थे। उसने अवधिज्ञान से जान लिया। यह तो मेरा पूर्वजन्म का बैरी है। भयंकर गर्जना की, पानी, ओला, पत्थर आदि बरसाये। उस पर भी शांत नहीं हुआ तो अग्नि की वर्षा कर दी; किन्तु भगवान पार्श्वनाथ सुमेरु पर्वत की तरह अडिग, निश्चल, ध्यान में तल्लीन रहे। सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। भगवान के ऊपर घोर उपसर्ग आया जानकर धरणेन्द्र, पद्मावती ने उपसर्ग दूर किया। पद्मावती ने फण फैलाकर उस पर पार्श्वप्रभु को बैठाया तथा धरणेन्द्र ने फण फैलाकर प्रभु के ऊपर छत्र बनाया। धरणेन्द्र, पद्मावती ने युद्ध नहीं किया बल्कि समतापूर्वक रक्षा करते रहे। उसी समय भगवान को केवलज्ञान हो गया। उन दोनों का आगमन देखकर संवर देव काँपने लगा। उसने सोचा- क्या करें, कहाँ जाएँ, अब तो बचने वाले नहीं हैं, कौन बचाएगा? तब वह उन्हीं पार्श्वप्रभु की शरण में आ गया और अपने कुकृत्यों की बार-बार क्षमायाचना करने लगा। मात्र थोड़े से अपमान के कारण बैर दस भव तक चलता रहा। किन्तु जो अधिकांश समय बैर ही रखते हैं, बैर जिनके जीवन की पूँजी है, बैर में जिनको आनन्द होता है, उसका क्या होगा? परमात्मा जाने !

जिसको संसार पार करने की इच्छा है। वह किसी भी प्राणीमात्र से बैर नहीं रखता है।

केवलज्ञान के बाद दिव्यध्वनि चलती रही और आज श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रभु को निर्वाण की प्राप्ति हुई। निर्वाण और निर्माण दोनों में

एक अक्षर का अन्तर है; किन्तु अर्थ दोनों का अलग है। निर्माण अर्थात् बनाना, मंजिल तक पहुँचने के लिए रास्ते का निर्माण करना होगा। निर्माण करके ही मंजिल पा सकते हैं। हमें अपनी मंजिल का निर्माण, रास्ते का निर्माण सीमेंट, रेत, मिट्टी, पत्थर इत्यादि से नहीं करना है बल्कि सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी द्रव्य से रास्ते का (सड़क) निर्माण कर मोक्षरूपी मंजिल को पाना है। अन्यथा रास्ते में कीचड़ फैल गया तो फँस जायेंगे। राग-द्वेष, मोह इत्यादि में फँस गये तो मंजिल की तरफ कदम नहीं बढ़ा सकेंगे।

अतः हमें पहले जीवन का निर्माण करना है। निर्माण करते-करते हम निर्वाण को अवश्य ही पा लेंगे। दुनिया के रास्तों को बनाने के लिए सभी सहयोग करते हैं; किन्तु निर्वाण तक पहुँचने के लिए स्वयं को ही चलना होगा।

भजन (तर्ज- तुमसे लागी लगन...)

तुम हो तारण तरण, वीर संकट हरण, पारस प्यारे।
हम तो आये हैं चरणों तुम्हारे।।

कृपा हम पर करो, कष्ट सारे हरो, जिन हमारे।
हम तो आये हैं चरणों तुम्हारे।।

काशी नगरी में जन्म लिया है, वामादेवी को धन्य किया।
अश्वसेन कुँअर, धरी वन की डगर, संयम धारे।।
हम तो आये हैं चरणों तुम्हारे।।1।।

तुमने छोड़ा है धनधाम सारा, छोड़ जग में सभी का सहारा।

तपसी से यह कहा, क्यों जलाते अहा, नाग कारें।।
हम तो आये हैं चरणों तुम्हारे।।2।।

मंत्र नागों को प्रभु ने सुनाया, जन्म स्वर्गों में जीवों ने पाया।
किये उपकार जिन, पार्श्व जी स्वार्थ बिन, प्रभु हमारे।।
हम तो आये हैं चरणों तुम्हारे।।3।।

प्रभु पारस ने ध्यान लगाया, कमठ पापी ने उपसर्ग ढाया।
धरणेन्द्र पद्मावती, आए नागपति, सुर विचारे।।
हम तो आये हैं चरणों तुम्हारे।।4।।

फण को पद्मावती ने फैलाया, प्रभु पारस को ऊपर बैठाया।
धरणेन्द्र आया वहाँ, फण का छत्र बना, उपसर्ग टारे।।
हम तो आये हैं चरणों तुम्हारे।।5।।

केवलज्ञान प्रभु ने जगाया, 'विशद' जीवों ने उपदेश पाया।
गये सम्मेदगिरि, पाये मुक्तिश्री, जिन हमारे।।
हम तो आये हैं चरणों तुम्हारे।।6।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

पार्श्वनाथ निर्वाण दिवस की, खुशियाँ सभी मनाते हैं।
धर्म प्रवर्त्तक हैं इस युग के, गीत उन्हीं के गाते हैं।।
हो प्रसन्न तन-मन से भविजन, जिन मन्दिर को जाते हैं।
है कितना सौभाग्य हमारा, लाडू चरण चढ़ाते हैं।
श्री पार्श्वनाथ भगवान की जय।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

15 अगस्त (स्वतंत्रता दिवस)

इंसान को जीवन से अधिक इंसानियत से प्यार है।
इंसान का यह जीवन भी प्रकृति प्रदत्त उपहार है।।
कोई भी इंसान परतंत्र होकर नहीं जीना चाहता है।
स्वतंत्रता तो इंसान का जन्म सिद्ध अधिकार है।।

भारत देश लगभग 200 वर्षों तक अंग्रेजी शासन का गुलाम रहा। भारतीय सपूतों ने आजादी के लिए अपने जीवन की कुर्बानी दी एवं अनेक यातनाएँ सहन की। महाराणा प्रताप, चन्द्रशेखर आजाद, सुभाषचन्द्र बोस, खुदीराम बोस, महात्मा गाँधी इत्यादि अनेक देशभक्तों ने जीवन की परवाह न करते हुए जेल की सलाखों के बीच रहकर हार नहीं मानी। हल्दी घाटी का युद्ध, जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की चर्चा सुनने से ही हृदय काँप जाता है, फिर उस समय की स्थिति क्या रही होगी?

आज हम उन शहीद देशभक्तों के जिंदाबाद के नारे तो लगा देते हैं; किन्तु उनके आदर्शों की ओर जरा भी ध्यान नहीं दे रहे हैं। 15 अगस्त सन् 1947 में भारत देश आजाद हुआ। सभी के मन में बड़ा हर्ष था, उल्लास था। हम सभी भारतवासी स्वतंत्र हो गये हैं; किन्तु हकीकत में देखा जाए तो स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता को ही स्वतंत्रता मान बैठे हैं। स्वतंत्रता अपनी मर्यादाओं में रहकर कार्य करें। स्वच्छंदता में कोई मर्यादा नहीं, जो करना करें, जब जो करना है कर सकते हैं।

एक घटना आती है स्वतंत्रता के अवसर पर सभी खुशियाँ मना रहे

थे। तब एक बुढ़िया नगर के बाहर खेत पर झोंपड़ी बनाकर रहती थी। उसने देखा कि सभी देशवासियों के अंदर खुशियों की लहर दौड़ रही है। उसने पूछा– बेटा यह क्या हो रहा है? तब एक व्यक्ति ने उत्तर दिया– तुमको पता नहीं, देश स्वतंत्र हो गया। बुढ़िया ने कहा– इसका क्या मतलब है? तब पुनः उत्तर दिया– अभी भारत पर अंग्रेजों का शासन था। हम भारतवासी अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकते थे। आज हम सभी स्वतंत्र हैं, जो करना चाहें करें, कोई रोकने वाला नहीं है।

रात्रि को बुढ़िया को गर्मी लग रही थी तो उसने रोड पर बिस्तर डाला और लेट गई। कुछ समय बाद एक ट्रक आया। उसने खूब हॉर्न बजाया; किन्तु बुढ़िया नहीं उठी। वह उतर कर नीचे आया, उसने कहा– माँ एक साइड हो जाओ, हमको गाड़ी निकालना है। तब बुढ़िया ने कहा– हम साइड से क्यों होवें, हम स्वतंत्र हो गये हैं, कहीं भी सोये। तू कौन है, यहाँ से अलग करने वाला, जा यहाँ से...। ड्राइवर ने कहा– नहीं माँ ऐसा नहीं होता। आप अलग हो जाइये, मुझे गाड़ी आगे निकालना है। बुढ़िया नहीं मानी तो ड्राइवर ने कहा– ठीक है। आप भारतवासी हम भी भारतवासी, आप भी स्वतंत्र हम भी स्वतंत्र। आप रोड पर लेटे, हम रोड से ट्रक आगे निकालेंगे। ड्राइवर ने गाड़ी आगे बढ़ाई तो बुढ़िया चीखकर भागी। बचाओ... बचाओ.....। अब हम पूछना चाहते हैं कि यह स्वतंत्रता है, स्वच्छंदता?

एक बार हम लोगों का विहार झाँसी से ललितपुर की ओर हो रहा था। बीच में एक स्थान है B.H.E.L. फैक्ट्री। वहाँ पर लगभग 25–26 परिवार जैन के हैं; किन्तु मंदिर नहीं है। लोगों ने आकर कहा–

महाराजश्री, आप यहाँ रुकें तो हमको भी धर्मलाभ मिलेगा। हमने पूछा– कितने परिवार हैं? लोगों ने बताया 25–26 परिवार हैं; किन्तु मंदिर नहीं है। हमको बड़ा आश्चर्य हुआ, है भी आश्चर्य की बात। पूछा आप लोगों ने बताया, यहाँ कुछ बड़े अधिकारी हैं, वह मंदिर नहीं बनाने दे रहे हैं। तब हमने कहा– उनसे कहो, हम जैन लोगों का नियम है कि भगवान का दर्शन करने के बाद ही भोजन करते हैं। तब लोगों ने कहा– महाराज, दूसरे लोग नहीं, जैन लोग ही मंदिर नहीं बनने दे रहे हैं। तब हमने कहा–ऐसा कैसे हो सकता है? तब लोगों ने बताया अधिकारी वर्ग है, उन्हें जब जहाँ जाना जाते हैं जब आना आ जाते हैं; किन्तु उनकी मैडम (पत्नी) को कहीं जाना तो गाड़ी उठाई चली जातीं है। कोई कहने वाला नहीं, रात में वापिस आये व 1–2 दिन नहीं आये, कोई बात नहीं, आराम से रहते हैं। किन्तु उनके माता–पिता कभी उनके पास आने का विचार बनाते तो इनके लिए कहने को है– हाँ, आप चलिए हमें तो खुशी होगी; किन्तु वहाँ पर मंदिर नहीं है इसलिए माता–पिता वहाँ नहीं आते और इनकी स्वतंत्र जिन्दगी बीत रही है। उनको डर है कि माता–पिता यहाँ आकर रुकते हैं तो हमारी स्वतंत्रता छिन जाएगी जो यहाँ–वहाँ जाना होता है तो वह रोक लगाएंगे इसलिए वह मंदिर नहीं बनने देते हैं।

प्यारे बंधु ! उनकी स्वतंत्रता को सुनकर बड़ा खेद हुआ। जो स्वच्छंदता को स्वतंत्रता मान बैठे हैं और हम आपसे पूछना चाहते हैं कि जिनके माता–पिता जिन्होंने अपनी जीवन की सारी खुशियाँ बेटों को योग्य बनाने में लगा दी, उनका ही माता–पिता के प्रति यह ख्याल

है। क्या वह इंसान कहलाने के अधिकारी हैं? क्या उन्होंने स्वतंत्रता के अर्थ को जाना है? कभी–कभी बुजुर्ग लोगों से चर्चा होती तो उनसे यह सुना जाता है कि महाराज अंग्रेजों के राज्य में जितनी शांति रहती थी, जितना शुकून था उतना आज के प्रजातंत्र में नहीं मिलता है। आज का शासनतंत्र इतना भ्रष्ट हो गया है कि कोई सज्जन व्यक्ति अपनी सज्जनता से जीना चाहे तो नहीं जी सकता है। उसे कहीं न कहीं अपनी जीवनोपयोगी कार्यों में हिंसा, झूठ, चोरी का सहारा लेना ही पड़ेगा। कोई बिल जमा कराने जाये तो रिश्वत, लोन निकालना चाहे तो रिश्वत, लाईट लगवाना चाहे तो रिश्वत, मकान बनवाना चाहे तो रिश्वत, जो रिश्वत दे उसका काम शीघ्र हो जाए, नहीं दे तो महीनों चक्कर काटता फिरे। दुकानदार नीतिपूर्वक दुकान नहीं कर पाए, व्यापारी नीतिपूर्वक व्यापार नहीं कर पाए। कहीं टोल टैक्स तो कहीं इन्कमटैक्स के द्वारा सताया जाता है। कोई विद्यार्थी योग्यता प्राप्त कर सर्विस करना चाहे तो भटकता रहे। कोई अपनी राजनीतिक पकड़ से या रिश्वत के द्वारा हीन बुद्धि वाला सर्विस प्राप्त कर ले; किन्तु रिश्वत के अभाव में सारी मेहनत पर पानी फिर जाए। यहाँ राजनीति की बात आती है तो भी चारों ओर घोटालाबाजी सुनने में आती है। सत्य भी है वन मंत्रियों ने वनों की अंधाधुंध कटाई काटकर वनों का नाश करवा दिया। खनिज मंत्रियों ने पर्वतों की क्षति करवा दी। कोई भी व्यक्ति एक बार मंत्री बन जाए तो देश, राज्य का विकास तो नहीं, मंत्रियों की सात पीढ़ी का विकास अवश्य हो जाता है।

आज के जमाने में संत और भगवंत भी स्वतंत्र नहीं रह पा रहे हैं।

पहले जंगलों में संत स्वतंत्र होकर रहते थे; किन्तु जंगलों का अभाव होने से धर्मशाला या निवास स्थानों पर रहना पड़ता और भगवंत के मंदिरों पर भी टैक्स आदि लगाए जाने लगे। वास्तविकता तो यह देखी जा रही है कि भारत देश तो स्वतंत्र हो गया है; किन्तु भारत की जनता अपने ही देश के कर्णधार नेताओं और अधिकारियों से परतंत्र हो गई है। इसका सबसे बड़ा कारण है कि लोगों ने स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता का वाना ओढ़ रखा है।

स्वतंत्रता का सही अर्थ है जो अपने नियमों के अपनी मर्यादा और सीमाओं में रहकर कार्य करना। जिस प्रकार एक नदी अपने दोनों किनारों के बीच स्वतंत्र बहकर सागर तक पहुँच जाती है; किन्तु जहाँ किनारों को तोड़कर स्वच्छंद हो जाए तो जन–धन की हानि करके सब कुछ विनाश कर देती है।

प्रत्येक व्यक्ति रोड पर चलने के लिए स्वतंत्र है; किन्तु अपनी दिशा से चलें तब यदि दिशाहीन हो जाए तो या तो एक्सीडेंट होगा अन्यथा पुलिस पकड़कर जेल में बन्द कर देगी। प्रत्येक व्यक्ति मकान, वाहन, देश, पत्नी, परिवार, समाज में रहने के लिए स्वतंत्र है; किन्तु उसी में जो उसके लिए रिजर्व है। यदि किसी के भी मकान, वाहन, देश, स्त्री, परिवार में रहने लग जाए तो क्या होगा? आप जानते हैं इससे सिद्ध है स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है; किन्तु स्वच्छंदता घातक है। हम सभी स्वतंत्र बने; किन्तु हमारे लिए किसी की स्वतंत्रता छीनने का कोई अधिकार नहीं है।

आज इंसान अहंकार में होकर औरों की स्वतंत्रता का हनन कर

रहा है। आज बहुमत के जमाने में कोई वाणी के ओज या समाज धर्म के नाम पर या छल–बल की नीति के आधार पर पदों पर पहुँच कर अपने–अपने चहेतों को खुश रखने के लिए मनमानी करके औरों की स्वतंत्रता को छलते रहते हैं।

इंसान की हमेशा से यह कमजोरी रही है कि औरों की आँखें फोड़ने के लिए स्वयं की आँख फोड़ना पड़े तो तैयार रहा है।

एक बार एक गरीब व्यक्ति बहुत परेशान था। वह संत के पास गया, अपनी परेशानी उनके पास रखी। संत ने उसे प्रभु की भक्ति का उपदेश दिया। उसने भक्ति की तो एक देव प्रसन्न हो गया। उसने भक्त से पूछा– क्या चाहता है, माँग ले वरदान? भक्त ने कहा– प्रभु मेरी दरिद्रता मिट जाए। तब देव ने कहा– ठीक है, जाओ जब तुम्हें कोई चीज की आवश्यकता पड़े तो आँख बंद करके 'नमः सिद्धेभ्यः' बोलना तो वस्तु प्राप्त हो जाएगी। किन्तु शर्त है जो वस्तु तुम्हें एक मिलेगी वह पड़ोसी के लिए दुगुनी मिलेगी। भक्त प्रसन्न होकर घर चला गया। उसने अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त की; किन्तु पड़ोसी के लिए दुगुनी मिलेगी। भक्त प्रसन्न होकर घर चला गया। उसने अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त की; किन्तु पड़ोसी के लिए दुगुनी प्राप्त हो गई। सब कुछ प्राप्त करने के बाद एक बार पड़ोसी की ओर झाँककर देखा तो सारी चीजें दुगुनी रखी दिखीं। वह परेशान हो गया, मेहनत मैं करता फल पड़ोसी को मिल रहा।

एक दिन पत्नी ने परेशानी का कारण जाना। तब पत्नी ने कहा– यदि आप परेशानी मिटाना चाहते हो तो इसके विपरीत वरदान माँग

लीजिए, सब ठीक हो जाएगा। वह समझा नहीं, तब पत्नी ने कहा– आप देव से माँगें कि मेरी एक टांग टूट जावे तो पड़ोसी की दोनों टांगें टूट गई। मेरा एक हाथ टूट जाए तो पड़ोसी के दोनों टूट जाए। मेरी एक आँख फूट जाए तो पड़ोसी की दोनों फूट जाए। इस प्रकार की बात सुनकर पति खुश हो गया। इससे आप इंसान की कमजोरी समझ गये होंगे।

आज देखा जाता है, कोई समाज का अध्यक्ष मंत्री बन जाए तो उसमें अपनी मनमानी करता है, कोई संस्था का अध्यक्ष, मंत्री बन जाए तो वहाँ मनमानी करता है, कोई मंदिर का अध्यक्ष मंत्री बन जाए तो वहाँ मनमानी करता है।

प्रत्येक विद्यार्थी को स्वतंत्र, पढ़ने, खेलने और खाने का अधिकार है; किन्तु अपने समय और मर्यादाओं के अंदर रहकर भारत में धार्मिक स्वतंत्रता संविधान में वर्णित है; किन्तु देखा जाता है कि व्यक्ति मुझे क्या करना है, इससे कहीं अधिक दूसरा क्या कर रहा है, क्यों क्या कर रहा है? उसे यह नहीं करने दिया जाए, इस ओर अधिक ध्यान देता है। यह स्वतंत्रता नहीं परतंत्रता का लक्षण है।

जियो और जीने दो यह मंत्र होना चाहिये।
नहीं कोई नागरिक परतंत्र होना चाहिये।।
आज हरेक देश का इंसान प्यारे बंधुओं !
स्वतंत्र था, स्वतंत्र है, स्वतंत्र होना चाहिए।।

हहहह●●●हहहह

कविता

वीर शहीदों की स्मृति में, फूल चढ़ाने आए हैं।
आजादी की वर्षगाँठ हम, यहाँ मनाने आए हैं।।
भारत माता की खातिर, उन वीरों ने बलिदान दिया।
दीन–हीन लोगों की खातिर, अपना जीवन दान दिया।।
वीरों की गौरव गाथा हम, फिर से गाने आए हैं।
वीर शहीदों..... ।।1 ।।
देश की खातिर बलवीरों ने, कष्ट अनेकों झेले हैं।
बन्दूकों तलवारों से जो, खून की होली खेले हैं।।
अलबेले उन वीरों के, आदर्श सामने आये हैं।
वीर शहीदों..... ।।2 ।।
उन वीरों की गौरव गाथा, सारी धरती गाएगी।
उनके बलिदानों को जनता, बार–बार दुहरायेगी।।
खेद है वीरों की अर्थी पर, फूल चढ़ा न पाए हैं।
वीर शहीदों..... ।।3 ।।
वीरों के सम्मानों में सिर, श्रद्धा से झुक जाता है।
हर भारतवासी वीरों के, आगे नत हो जाता है।।
हम भी श्रद्धा से समाधि पर, फूल चढ़ाने लाए हैं।
वीर शहीदों..... ।।4 ।।
सन् उन्नीस सौ सैंतालिस का, दिन दुहराया जाता है।
राष्ट्रीय पर्व पन्द्रह अगस्त को, विशद मनाया जाता है।।
आज पुनः राष्ट्रीय ध्वज मिलकर, हम फहराने लाए हैं।
वीर शहीदों..... ।।5 ।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

रक्षाबन्धन

(वात्सल्य का पर्व)

प्यारे बन्धुओ ! अपनी बात पर्व को लेकर चली थी। पर्व जो आत्मा को पवित्र करे, पावन बनाये, वह पर्व है। पर्व शाश्वत् हैं, अनादिकालीन हैं। हम पर्वों को अनादिकाल से मनाते आ रहे हैं; किन्तु आज तक आत्मा को पावन नहीं बना पाये, पर्व की वास्तविकता को नहीं जान पाए हैं। आज के दिन एक नहीं दो पर्व हैं, यह दोहरा पर्व है। आज भगवान श्रेयांसनाथ ने मुक्तिश्री की प्राप्ति की थी। मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति की थी इसलिए निर्वाण दिवस भी है। इसकी 'मुकुट सप्तमी' के दिन काफी चर्चा हुई थी। दूसरी ओर आज वात्सल्य पर्व है।

प्यारे बन्धु ! सत् मार्ग पर चलते चलाते रहिए।
सम्यक्ज्ञान का अमर दीपक जलाते रहिए।।
आज रक्षाबन्धन वात्सल्य का महान् पर्व है।
वात्सल्यमय होकर हृदय से हृदय मिलाते रहिए।।

दुनिया स्वार्थी है, इंसान का स्वार्थमय जीवन है। आज के जो पर्व हैं मात्र सम्पत्ति सम्बन्ध खाने–पीने तक ही सीमित रह गये हैं। लोगों की धारणा सम्पत्ति तक जुड़ी है और दिन–रात सम्पत्ति एकत्रित करने में लगे हुए हैं। सम्पत्ति अर्जित करने के लिए कुछ भी कर लेंगे। चाहे शुभ कार्य हो या अशुभ कार्य हो; किन्तु धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं होती है। सम्पत्ति के चक्कर में लोग धर्म को विस्मरण कर देते हैं। प्यारे बन्धुओं ! हम पूछना चाहते हैं कि सम्पत्ति एकत्रित करके कहाँ ले जाओगे, कहाँ मरोगे, कहाँ जीओगे, संसार के बाहर कहाँ जाओगे, संसार से छूटने का एकमात्र दरवाजा यहाँ ही है।

दरवाजा बन्द होने पर अन्दर प्रवेश नहीं हो सकता। अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जब दुनियाँ के सारे दरवाजे बन्द हो जाते हैं तब भी यह दरवाजा खुला रहता है। किसी कवि ने कहा भी है–

जब कोई नहीं आता, मेरे प्रभुवर आते हैं।
मेरे दुख के दिनों में वे, बड़े काम आते हैं।।

अन्य दरवाजे पर सहारा नहीं मिलेगा; किन्तु वहाँ से ठोकर खाते हैं, तब हारे हुए खिलाड़ी की भाँति परमात्मा के द्वार को प्राप्त करते हैं; दुनिया के लोग आज मानते हैं धर्म में चमत्कार नहीं है। लेकिन प्यारे बन्धु **''धर्म आडम्बर चमत्कारी नहीं होता है, धर्म तो चित् चमत्कारी होता है।''** चित् चेतन का नाम है जैन सिद्धान्त आडम्बर से दूर है। विष्णुकुमार मुनि की साधना का फल, उनको ऋद्धि प्राप्त होने पर भी पता नहीं चला कि हमको ऋद्धि प्राप्त हो चुकी है। दुनिया के अन्दर होने वाले चमत्कार दिखावा मात्र हैं, ढोंग हैं, थोड़े समय तक कुछ क्षण तक ही रहते हैं; किन्तु जो एक बार जागृत हो गया, जिसे अपने चैतन्यस्वरूप का भान हो गया, वह कभी समाप्त नहीं होगा। लोग कहते हैं जिनधर्म में चमत्कार नहीं है। लेकिन इससे बड़ा चमत्कार क्या होगा कि पंचमकाल में बाह्य पदार्थों में भौतिकता की चकाचौंध में दबा इंसान अन्न का कीड़ा बना है। फिर भी जिनरूपधारी संत इस धरती पर विचरण करते, साधना करते हुए उनके दर्शन होते हैं। यह क्या कोई कम चमत्कार है? कहा भी है–

कलौ काले चले चित्ते, देह चान्नादि कीटके।
एतत् चित् चमत्कारः, जिनरूप धरा नरः।।

कलिकाल में इन्सान का चित्त इतना चंचल है जिसकी कोई उपमा

नहीं। इंसान अन्न का कीड़ा बना है फिर भी कितना बड़ा चमत्कार है कि जिनरूप को धारण करने वाले सन्तों के दर्शन प्राप्त हो रहे हैं।

अरे ! आप उस मुर्दा चमत्कार की बात करते हो (मिट्टी) मृणमय चमत्कार की बात करते हो। मिट्टी से मिठाई, रुपया, फल आदि बनाकर दिखाने वाला आ जाये तो आप उसकी प्रशंसा करते हुए नहीं थकते और बाद में उसके माँगने पर तुरन्त जेब से रुपये निकालकर दे देते हो; किन्तु कोई भिखारी आ जाए– साहब मैं दो दिन से भूखा हूँ, कुछ खाने को दे दीजिए, रुपया–पैसा दे दीजिए जिससे अनाज लेकर पेट की क्षुधा शांत कर लूँ। तो आप उसे धक्का मारकर बाहर निकलवा देते हो, खरी–खोटी बातें सुनाते हो। प्यारे बन्धुओं ! ध्यान रखना कहीं तुम्हें भी भिखारी बनकर किसी के द्वार से भीख माँगने पर मजबूर न होना पड़े। फिर आपके साथ भी ऐसा व्यवहार हो सकता है। कभी किसी के साथ दुर्व्यवहार मत करना।

यदि कोई मिट्टी से धन, दौलत आदि प्राप्त कर लेता है तो वह चमत्कार नहीं धोखा है। जिनेन्द्र भगवान साक्षात् नहीं मिलते, स्थापना निक्षेप से उनकी प्रतिमा है। जबकि आज सन्तों के दर्शन प्राप्त होते हैं, यह बहुत बड़ा सौभाग्य है, आज के पूर्व लोग दर्शन करने को तरसते थे। कवि ने अपनी भावना प्रकट करते हुए कहा हैह्लह्ल

संतों का दर्शन कहीं पाता नहीं।
दिल दुःखी है, दुःख सहा जाता नहीं।।
मन में आता है मैं भी साधु बनूँ।
पर साधु बिन साधू बना जाता नहीं।।

संतों के दर्शन से अनादिकाल के कर्म भस्म होते हैं। कहा भी हैह्लह्ल

दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वन्दनेन च।
न तिष्ठति चिरं पापं छिद्र हस्ते यथोदकम्।।

आज का पर्व सन्तों के ऊपर वात्सल्य भाव का पर्व है। **''आज का यह पर्व मुक्ति पर्व है, हरीतिमा का पर्व है, धर्मरक्षा का पर्व है, खुशहाली का पर्व है, भाईचारे का पर्व है, सौहार्द्र का पर्व है, मानमर्दन का पर्व है, रक्षा की शिक्षा का पर्व है, प्रकाश का प्रेरक पर्व है। जोड़ने वाला पर्व है, वात्सल्य, स्नेह, प्रेम का पर्व है।** यहाँ प्रेम की बात बताई गई है। प्रेम दो प्रकार का होता है, प्रथम शारीरिक द्वितीय आत्मीय प्रेम। शारीरिक प्रेम नरक की ओर ले जाता है; किन्तु आत्मीय प्रेम ऊर्ध्व की ओर ले जाता है। स्वर्ग और मोक्ष दिलाता है।

वर्तमान में लोगों की धारणा है– यह पर्व भाई–बहिन के प्रेम का, बहिन की रक्षा का पर्व है। स्त्री (बहिन) असहाय होती है। तीनों पन असहाय में व्यतीत करती है। घर में बेटी माता–पिता के दबाव में रहती है। शादी होते ही पति के दबाव में रहती और वृद्ध होने पर लड़के, बहू के दबाव में रहना पड़ता है। दूसरी ओर नारी प्रेम की पेढ़ी मानी गई है। अपने घर से विदा होती है तब यह कहती हम भाई–बहिन एक ही घर में जन्मे हैं। हे भाई ! हम और आप एक ही डाली से खिलने वाले दो फूल हैं। मेरे लिए इस घर से निकाल दिया जाता है और भैया तुम उसी घर में माँ–बाप के पास में रहते हो। हमें दूसरा घर बसाना है वहाँ क्या स्थिति हो पता नहीं, अतः ध्यान रखना। प्यारे बन्धु ! मरकर दूसरे घर को अपना बनाना आसान है; किन्तु जीते जी दूसरे घर में अपनत्व बना लेना कठिन बात है; क्योंकि ससुराल में बहू स्वतंत्र नहीं रह पाती है तथा वह माँ–बाप की मेहमान बन जाती है।

कुछ ठिकाना नहीं है। इसलिए भैया को राखी बाँधकर सहायता की भीख माँगती है। बहिन भाई से कहती है– हम लोग साथ रहे हैं, निश्चित रूप से प्रेम का झरना झरता, आप हमें भेज रहे हो, कैसा जीवन जीना पड़ेगा और अपने प्रेम का बंधन बाँधती है, धागा बाँधती है। धागा रत्नत्रय सम्यक्त्व का सूचक है, रत्नत्रय का प्रतीक है। रत्नत्रय की योग्यता ही मोक्षमार्ग कहलाती है। मोक्ष को सातवें नं. का तत्त्व चुनकर रखा है। जब तक व्यक्ति विकारों में उलझा रहेगा, पर–पदार्थों में अटका रहेगा तब तक स्वयं की ओर ध्यान केन्द्रित नहीं हो सकेगा।

प्यारे बन्धुओ ! आज का पर्व वात्सल्य का पर्व है। वात्सल्य किसके प्रति हो, किन पदार्थों के प्रति हो। क्या संसार के प्रति वात्सल्य हो, नहीं ना। वास्तविक वात्सल्य तो धर्म के प्रति होता है। 'छहढाला' में कहा हैह्लह्ल

धर्मी सौं गौ वच्छ प्रीति सम कर जिनधर्म दिपावे।

बड़े आश्चर्य की बात है, वात्सल्य हृदय से झरने वाला झरना है; किन्तु मनुष्य वात्सल्य को नहीं जानता, गाय मनुष्य को वात्सल्य की शिक्षा देती है। शिक्षा ग्रहण करना है तो गाय और हिरण से सीखो। जिस प्रकार से गाय स्वयं भूखी रहकर बछड़े को दूध पिलाती है। आपके परिवार को दूध देती है। आपके परिवार का पालन–पोषण भी ताजा पौष्टिक घी, दूध देकर करती है। इसमें इंसान का स्वार्थ हो सकता है। **जब तक गाय दूध देती है तब तक घर में रखते हैं; किन्तु दूध नहीं देने पर बेच देते हैं। यदि आपको बेचना ही है तो जिस प्रकार आप अपनी लड़की की शादी करते समय सैकड़ों जगह वर देखते हो। अनेक लोगों से पूछताछ करते हो। उसी प्रकार गाय (लड़की) है। बेचारी कुछ कह नहीं सकती, कुछ**

कर नहीं सकती। उस परिवार को अच्छी तरह से परख लो क्या गाय वहाँ सुखपूर्वक रह पायेगी, जहाँ आप उसे बचे रहे हैं?

आप लड़की को सुखी देखते हो और गाय को स्वयं कष्ट देते हो। प्यारे बन्धुओ ! वात्सल्य सम्यक्दर्शन का एक अंग है और एक भी अंग से हीन सम्यक्दर्शन कार्यकारी नहीं है। आज हमें सम्यक्दर्शन को पूर्ण करना है।

इस महीने को सावन कहते हैं। समकित का सावन पर्व है। समकित आते ही सात प्रकृतियों का उपशम हो जाता है। साबुन मैल को धोता है, तन को साफ करता है, गन्दगी दूर करता है। लेकिन ये सावन हमारे चित्त को साफ करता है। ऐसा माना जाता है कि लोक में आज का पर्व मुख्य रूप से ब्राह्मणों के लिए, दशहरा क्षत्रियों के लिए, दीपावली वैश्यों के लिए, होली शूद्रों के लिए होती है। होली पर क्या होता है? सभी नालियों का कूड़ा–कचरा साफ हो जाता है। होली शूद्रता का कर्म है। आज का पावन पर्व हमारे जीवन में प्रेम वात्सल्य को जगाने वाला है। आत्मस्वरूप से मिलाने वाला है। अतः यह ब्राह्मण का पर्व है। इस पर्व का प्रारम्भ भगवान वासुपूज्य के समय से हुआ। संसार के अन्दर उतार–चढ़ाव होते हैं। विष्णुकुमार मुनि का नाम सभी जानते हैं। आपने कई बार कथा पढ़ी होगी। उज्जैनी नगर में **श्रीवर्मा** नामक राजा राज्य करता था। उसके चार मंत्री **बलि, प्रहलाद, नमुचि, बृहस्पति** थे। चारों मंत्री राजा के नजदीकी थे, मंत्री बहुत विद्वान् थे; किन्तु सबसे बड़ी कमी थी कि वह जिनधर्म से हीन थे और अहंकारी थे। अहं में खोये थे, अहं दुर्गति का कारण माना गया है। एक बार संत से किसी ने पूछा– **नरक में कौन जाता है?** संत ने कहा– कौन पूछ रहा है। उसने अकड़कर कहा– मैं पूछ रहा हूँ। तब संत ने कहा– **व्यक्ति के अंदर मैं और अहंपना आ जाता है। बस, वही नरक जाता है।** कहा भी हैह्लह्ल

बकरा मैं मैं बोलकर, अपनी खाल खिचाय।
मैना मैं ना कर सदा, दूध भात फल खाय।।

अकंपनाचार्य 700 मुनियों सहित नगर में पधारे। आज सात महाराज नगर में आ जाएँ तो लोग घरों को छोड़कर दर्शन के लिए दौड़ लगाते हैं। यह बात हमेशा रही है। संत सत्य के पक्षधर होते हैं। मंत्री असत्य का जीवन व्यतीत कर रहे थे। लेकिन अंत जब आता है तो सत्य और असत्य से परिचित होते हैं। असत्य समय पर कुचला जाता है।

राजा महल में बैठा हुआ था। लोगों को पीले परिधान में नगर से बाहर जाता हुआ देखकर पूछा कि **''ये लोग कहाँ जा रहे हैं, यह यात्रा का समय तो है नहीं।''**तब मंत्रियों ने कहा– नगर के बाहर उद्यान में कुछ नंगे, ढोंगी और अज्ञानी साधु आये हैं, सभी वहीं पर जा रहे हैं। तब राजा ने कहा– हम सभी वहाँ चलेंगे। अकम्पनाचार्य मुनिराज निमित्त ज्ञानी थे। उन्होंने किसी निमित्त को देखकर अपने ज्ञान से जान लिया कि कुछ अशुभ होने वाला है। इसलिए अकंपनाचार्य ने समस्त संघ को आदेश दिया कि राजादिक के आने पर किसी के साथ वार्तालाप न किया जावे अन्यथा अनर्थ हो जाएगा। समस्त संघ का विनाश हो जाएगा और सभी को मौन रहने का आदेश दिया। श्रुतसागर मुनि लघुशंका की बाधा आने से बाहर गये थे। शंका विचित्र होती है, छोटी हो या बड़ी। स्वभाव से वंचित कर देती है। आपके जीवन में शंका आ जाती है तो आप स्वभाव से च्युत हो जाते हैं। आज सारी की सारी दुनियाँ के अन्दर शंका है। मंदिर होते हैं कि नहीं, नरक–स्वर्ग है तो कहाँ है? भगवान होते हैं कि नहीं आदि। व्यक्ति के अन्दर शंका आने पर तूफान खड़ा कर देती है। श्रुतसागर मुनि आदेश नहीं सुन पाए थे। राजा श्रीवर्मा ने जाकर देखा, पूरा का पूरा

संघ मौन है, नमोस्तु किया, आशीर्वाद भी नहीं मिला। राजा ने आचार्यश्री को नमोस्तु किया और कुछ प्रश्न किये किन्तु आचार्यश्री भी मौन रहे। मंत्री मिथ्यादृष्टि थे। राजाज्ञा से दर्शनार्थ आये थे। मंत्री दुष्ट भाव से कहने लगे– राजन्, इन मुनियों को कुछ ज्ञान नहीं है। इसलिए ये मौन रहने का ढोंग कर रहे हैं; क्योंकि **'मौनं मूर्खस्य लक्षणम्'** मौन रहना मूर्खों का लक्षण है। जो मूर्ख अज्ञानी होते हैं, ज्ञान न होने से मौन रहते हैं।

मंत्री ने कहा– राजन् ! आपके जैसे महान् महापुरुष के आने पर भी आशीष नहीं दिया, ये आपका बड़ा अपमान है। ये बड़े अहंकारी हैं और हमेशा गंदे रहते हैं, यहाँ तक कि नहाते भी नहीं हैं। इत्यादि बातें करते हुए नगर की ओर लौट पड़े। कुछ दूर चलने पर देखा कि श्रुतसागर मुनि आहारचर्या से लौट रहे थे। अचानक राजा और चारों मंत्री मिल जाते हैं। कटु शब्दों में बोले– देखो, एक वह **''बैल मट्ठा (छाछ) पीकर आ रहा है।''** छाछ नीरस होती है और साधुजन अधिकांशतः नीरस भोजन लेते हैं। मंत्रियों ने शास्त्रार्थ किया; किन्तु मुनि श्रुतसागर ने उन्हें पराजित कर दिया। एक पर एक प्रश्न किया; किन्तु मुनिराज उत्तर देते गए, क्योंकि असत्य की जड़ गहरी नहीं होती है। असत्य के वृक्ष थोड़ी सी हवा में उखड़ जाते हैं; लेकिन सत्य के वृक्ष इससे विपरीत होते हैं जिनकी जड़ गहरी होती है। मुनिराज के स्याद्वादी जवाबों और प्रश्नों को सुनकर मंत्री निरुत्तर हो गये और अपमानित हुए। मुनि श्रुतसागर ने गुरु के निकट जाकर सारी राम–कहानी कह दी। आचार्यश्री बोले– तुमने ठीक नहीं किया, वाद–विवाद की जरूरत नहीं थी। तुम्हारे शास्त्रार्थ करने से सारे संघ पर आपत्ति आ सकती है। संघ का जीवन खतरे में पड़ गया है। मुनि श्रुतसागरजी ने क्षमा माँगते हुए बचाव का उपाय पूछा। आचार्यश्री ने कहा– तुमने जहाँ शास्त्रार्थ किया

था उसी स्थान पर जाकर सामायिक करो तो संघ जीवित रह सकता है और तुम्हारे अपराध की शुद्धि हो सकती है। तदन्तर श्रुतसागर मुनि वहाँ जाकर कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित हो गये।

अत्यन्त लज्जित और क्रोध से भरे हुए मंत्री रात्रि में समस्त संघ को मारने जा रहे थे कि उन्होंने कायोत्सर्ग खड़े हुए उन्हीं मुनिराज को देखकर विचार किया कि **''जिसने हम लोगों का पराभव (अपमान) किया है वही मारने के योग्य है। पहले उसी को देखते हैं।''** मंत्री एक–दूसरे को इशारा करने लगे। तलवार तुम चलाओ; किन्तु किसी की हिम्मत नहीं पड़ती है। मंत्री ज्ञानी तो थे ही, क्रोध और अहंकार के कारण बदले की भावना काम कर रही थी। वे जानते थे कि ऋषि–हत्या द्वारा होने वाला कर्म का फल बहुत ही घोर होता है। जैन सिद्धांत में इसे निधत्ति और निकाचित् कर्म के नाम से कहा गया है। जिस कर्म के बन्ध में न उत्कर्षण हो न अपकर्षण, संक्रमण और उदीरणा कुछ भी नहीं हो सकती है। जैसा किया वैसा ही भोगना पड़ता है। यह कर्म देव–शास्त्र और गुरु की अवज्ञा करने से बँधता है। इस कर्म को धोने के लिए कहीं स्थान नहीं है। सांसारिक कार्यों में कर्म बँधते हैं, उन्हें धर्मस्थल पर धो लेते हैं। किन्तु धर्मस्थल पर बंधे कर्म कहाँ धुलेंगे? आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा हैह्लह्ल

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं धर्म क्षेत्रे विनश्यति।
धर्म क्षेत्रे कृतं पापं वज्र लेपो भविष्यति।।

अर्थात् अन्य स्थान पर किया कर्म, धर्मस्थल पर धो लेंगे; किन्तु धर्मस्थल पर किया पाप कहाँ धोओगे? धर्मक्षेत्र में बंधे कर्म को धोने के लिए आपके ऑफिस, कारखाने में साबुन नहीं है, जिससे उसे धो सको। साधु के ऊपर तलवार जो पहले उठायेगा उसे कर्म का बंध होगा। क्रोध और मान

धक्का लगा रहा है; किन्तु उनके हाथ पीछे हट रहे हैं। चारों ने सलाह की और एक साथ तलवार चलाई। उसी समय उस स्थान के रक्षकदेव का आसन कम्पायमान हुआ। उसने उन सबको उसी अवस्था में कीलित कर दिया। जब–जब किसी संत और भगवन्त पर उपसर्ग होता है तो अवश्य ही कोई भक्त आकर उपसर्ग दूर कर दुष्टों को दण्ड देते हैं। यहाँ भी यही हुआ। प्यारे बन्धुओं ! इंसान की बात छोड़ो, पशु के ऊपर तलवार उठाई जाती है तो दिल दहल जाता है। प्रातःकाल सब लोगों ने उन मंत्रियों को उसी प्रकार कीलित तथा श्रुतसागर मुनि को ध्यानावस्था में अवस्थित देखा। मंत्रियों की कुचेष्टा से राजा बहुत क्रुद्ध हुआ। परन्तु ये मंत्री वंश परम्परा से चले आ रहे हैं। यह विचारकर उन्हें मृत्यु दण्ड तो नहीं सिर्फ गर्दभारोहण कर मुँह काला करके देश से निकाल दिया।

तदन्तर कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर में राजा **महापद्म** राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम **लक्ष्मीमति** था। उनके दो पुत्र थे– **पद्म** और **विष्णु**। एक समय राजा महापद्म, पद्मनामक पुत्र को राज्य देकर विष्णु नामक पुत्र के साथ श्रुतसागर चन्द्र नामक आचार्य के पास मुनि हो गये। वे बलि आदिक मंत्री यहाँ आकर पद्मराजा के मंत्री बन गये। उसी समय कुम्पुर के दुर्ग में राजा **सिंहबल** रहता था। राजा पद्म उसे पकड़ने की चिंता में दुर्बल होता जा रहा था। उसे दुर्बल देखकर एक दिन बलि ने कहा कि ''हे देव ! दुर्बलता का क्या कारण है?'' राजा ने उसे दुर्बलता का कारण बताया कि राजा सिंहबल हमारे राज्य पर आक्रमण करता है, हम उसे जीवित नहीं पकड़ पा रहे हैं। यह बात सुनकर तथा आज्ञा प्राप्तकर बलि आदि मंत्री वहाँ गये और अपनी बुद्धि के माहात्म्य से दुर्ग को तोड़कर राजा सिंहबल को बन्दी बनाकर वापस आ गये और उन्होंने सिंहबल राजा पद्म को सौंप

दिया। राजा पद्म ने खुश होकर मंत्रियों से कहा– **''तुम अपना वाँछित वर माँगो, जो माँगोगे तुम्हें दिया जाएगा;''** किन्तु मंत्री बहुत चतुर थे। बलि ने कहा– जब आवश्यकता पड़ेगी तब हम वर माँग लेंगे।

कुछ दिनों में विहार करते हुए अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों का संघ उसी हस्तिनापुर में आया। उनके आते ही नगर में हलचल मच गई। लोग दर्शनार्थ जाने लगे। बलि आदि मंत्रियों ने उन्हें पहचान लिया कि ये वही मुनि हैं जिनके ऊपर उपसर्ग किया था, जिन्होंने हमको शास्त्रार्थ में हरा दिया था। भय एवं बदले की भावना से प्रेरित होकर मुनियों को मारने के लिए मंत्रियों ने राजा पद्म से अपना पहला वर माँगा, जो धरोहर रूप में रखा था। राजा से निवेदन किया– महाराज, हमारा जो वर आपके पास है उसकी हमें जरूरत है। **प्यारे बन्धु ! ध्यान रखना दान और वरदान को तुरन्त देना कल पर नहीं छोड़ना वरना बहुत बड़ा खतरा उत्पन्न हो जाता है।** वरदान देकर राजा दशरथ उपश्रेणिक, शान्तनु और पद्म को कितना बड़ा पश्चात्ताप करना पड़ा, सभी जानते हैं। राजा ने मंत्रियों से कहा– बोलो, क्या चाहते हो? दुष्ट मंत्री ने कहा– हम सात दिन का राज्य चाहते हैं। तदन्तर राजा पद्म सात दिन का राज्य देकर अन्तःपुर में चला गया। इधर राजा ने आतापगिर पर कायोत्सर्ग से खड़े हुए मुनियों को बाड़ी से वेष्टित कर यज्ञ करना शुरू कर दिया। उस यज्ञ में जूठे सकोरे, कचरा, माँस, बकरा आदि पशुओं का कलेवर तथा धूप आदि के द्वारा मुनियों को मारने के लिए बहुत भारी उपसर्ग किया। मुनि सन्यास लेकर नियम सल्लेखना में स्थिर हो गये।

प्यारे बन्धुओ ! मुनियों के ऊपर उपसर्ग हो रहा है; किन्तु राजा को

कोई खबर नहीं। मिथिलागिरी में आधी रात के समय बाहर निकले हुए श्रुतसागर चन्द्र आचार्य ने आकाश में काँपते हुए श्रावण नक्षत्र को देखा तो मुँह से निकला– **''ओह ! महामुनियों पर उपसर्ग हो रहा है।''** यद्यपि साधुजन रात्रि में मौन रहते हैं; किन्तु इस स्थिति को देखकर बोल पड़े। पास ही बैठे पुष्पधर नामक विद्याधर क्षुल्लक ने पूछा कि कहाँ, किस पर घोर उपसर्ग हो रहा है? उन्होंने कहा कि ''हस्तिनापुर में अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों पर उपसर्ग हो रहा है।'' यह उपसर्ग कैसे दूर हो सकता है? क्षुल्लक द्वारा पूछे जाने पर कहा कि ''धरणिभूषण पर्वत पर विक्रिया ऋद्धि के धारक विष्णुकुमार मुनि स्थित हैं, वे उपसर्ग दूर कर सकते हैं।'' उनको तपस्या के प्रभाव से विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हुई है; किन्तु उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है। ऐसा सुनकर क्षुल्लक उनके पास गये और सब समाचार कह सुनाया। उन्होंने अपना हाथ फैलाकर देखा तो हाथ सुमेरु पर्वत तक पहुँच गया। तब ज्ञात हुआ कि ऋद्धि प्राप्त हो चुकी है। प्यारे बन्धु ! इससे साधुओं की निष्पृहता ज्ञात होती है।

छह दिन तक क्रम–क्रम से यज्ञ होता रहा। साधुओं पर उपसर्ग हो रहा है। राजा वचनबद्ध था; क्योंकि सात दिन का राज्य और साथ में अभयदान भी दिया था। क्षत्रियों की परम्परा है, क्षत्रिय वचन से बदलते नहीं हैं। उतावलापन खतरनाक होता है। राजा प्रसन्नता में यह भूल जाता है कि राज्य देने का दुष्परिणाम क्या होगा? राजा दशरथ ने कैकई को वरदान दिया तो पछताना पड़ा। विक्रिया का निर्णय कर मुनि विष्णुकुमार ने हस्तिनापुर जाकर राजा पद्म से कहा कि तुमने यह क्या कर दिया जो मुनियों पर उपसर्ग हुआ? राजा पद्म ने लज्जित होकर कहा–**''क्या करूँ मैंने पहले इन्हें वरदान दे दिया था।''**

पश्चात् विष्णुकुमार मुनि बटुक का भेष बनाकर यज्ञस्थल में आये और उत्तम शब्दों द्वारा वेद पाठ शुरू कर दिया। पश्चात् **'भिक्षाम् देहि–2'** की आवाज लगाई। बौने ब्राह्मण ने कहा– हमें ज्यादा नहीं बस तीन पग भूमि दे दो। मंत्री ने कहा– ब्राह्मण तुम मकान माँग लो, वस्त्र आदि माँग लो। तीन पग भूमि में तो तुम ठीक से बैठ भी नहीं पाओगे। तब बटुक ब्राह्मण ने कहा– देते हो कि नहीं अन्यथा मैं चला। तब मंत्री ने कहा– अच्छा तुम्हें तीन पग भूमि देता हूँ। ब्राह्मण ने कहा– राजा हमको विश्वास नहीं है कि तुम वचन का पालन करोगे। सिर पर कलश लेकर अग्नि की साक्षी में प्रतिज्ञा करो कि तीन पग भूमि मुझे दोगे। राजा ने प्रतिज्ञा की, हम वचन का पालन करेंगे। तब बटुक ने अपनी विक्रिया फैलाना प्रारम्भ की। एक पैर सुमेरु पर्वत पर रखा और दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत पर रखा; किन्तु तीसरा पैर कहाँ रखा जाए पूँछने पर लज्जित मंत्री चरणों में झुक जाते हैं। अब तीसरा कदम मेरी पीठ पर रख दीजिए भगवन् ! मंत्रियों ने ऐसा कहा। प्यारे बन्धुओ ! विष्णुकुमार मुनि के अन्दर कितना वात्सल्य था कि साधु और धर्म के प्रति अपनी जीवन भर की साधना को दाव पर लगा दिया। उस समय धर्म की रक्षा की थी; किन्तु वर्तमान में कतिपय साधुओं के द्वारा ऐसा उपदेश दिया जाता है कि नगर में साधु आये, पहले उसकी परीक्षा करो, उसे खोजो फिर आहार दो। क्या विष्णुकुमार मुनि ने भी उनकी परीक्षा की, बाद में उपसर्ग टाला था? नहीं न। मुनिराज ने पीठ पर पैर नहीं रखा जो चरणों में झुक गया, उसे गले से लगा लिया था, उसे आशीर्वाद दिया। मंत्री के जीवन में अमूल्य परिवर्तन हुआ। वे चारों मंत्री जैनधर्म के अनुयायी हो गये। संत की महानता धन्य हो गई। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने साधु का स्वरूप कहा हैह्ल

भिक्खं वक्कं हिययं सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहू।
ऐसो सुहिद साहू भणियो जिण सासणे भयवं।। मूलाचार।।

जो वचन और भोजन की शुद्धि रखते हुए सदा चारित्र का पालन करते हैं। जिनशासन में ऐसे साधु को भगवान कहा है अर्थात् ऐसे साधु चलते–फिरते भगवान हैं, तीर्थ हैं।

कहने का तात्पर्य है जिनकी भिक्षावृत्ति, चर्या, जीवनशैली शुद्ध हो, ऐसे संत भगवान हैं। मुनिराज विष्णुकुमार ने वात्सल्य का परिचय दिया। सात दिन के बाद आज का दिन रक्षाबंधन का दिन बन गया था। वे राजा के मंत्री हैं, जो कषायों के गर्त में फंसे हैं। राजा पद्म अपनी सत्ता को कषायरूपी मंत्रियों को सौंपे हुए है। यह तो मात्र दृष्टान्त है। वह विष्णुकुमार मुनिराज एक थे; किन्तु आज हर घर में विष्णु हैं, आवश्यकता मात्र जागृत होने की है, हम सोये हुए हैं। हे भगवन् ! हे भव्य आत्माओ ! कषायरूपी शत्रुओं पर तुम्हें विजय प्राप्त करना है। तभी तुम्हारा रक्षाबंधन मनाना सार्थक होगा। आचार्य संघ सहित सात सौ मुनि उपसर्ग दूर होने पर शरीर से शिथिल हो चुके थे। लोगों के आग्रह पर आहारचर्या पर निकलते हैं। हस्तिनापुर के घर–घर में चौके लगे। श्रावकों ने भक्तिभाव से पड़गाहन किया। दाता के सात गुण में एक गुण है विवेक अर्थात् साधु के लिए आहार में क्या देना उचित होगा? यज्ञ के धुआँ एवं सात दिन के उपवास से मुनियों के कण्ठ रूँध गये, उन्हें आहार में सिवैया तैयार करके आहिस्ते–आहिस्ते आहार कराया एवं उचित वैयावृत्ति की। जिनके घर पर आहार हुए वे श्रावक धन्य हैं। बाकी श्रावक क्या करें तो उन्होंने एक–दूसरे को अपने घर में आहार कराया और आपस में रक्षासूत्र बाँधा था और ये संकल्प किया था कि धर्म की रक्षा के लिए आगे आएँगे।

अन्य मत में इसी सम्बन्ध में एक और कथानक आता है। मेवाड़ की रानी कर्मवती ने शेरशाह के द्वारा अपने राज्य पर आक्रमण किये जाने पर हुमायूँ के पास राखी भेजकर सहायता माँगी थी। इसी प्रकार सिकन्दर की यूनानी प्रेमिका हेलन ने सिकन्दर की रक्षा की। पुरु द्वारा सिकन्दर से पराजित होने पर हेलन ने भाई बनाया था।

आज देश में कहीं भाई निराश हैं बहिन के बिना तो कहीं बहिन निराश हैं भाई के बिना। जब तक लोग संकीर्णता में जी रहे तब तक निराश हैं। विशाल हृदय के लिए न भाई की कमी है, न बहिन की कमी है। एक बहिन भाई के बिना निराश बैठी थी। सोच रही थी– आज मेरा भाई होता तो मैं राखी बाँधती, खुश होती। तभी पिता ने देखा तो पूँछा– बेटी क्या बात है? उसने कहा– आज रक्षाबंधन है, मेरा भाई नहीं है, फूट–फूटकर रोने लगी। पिताजी तुरन्त ही बाजार से 100 राखियाँ और मिठाई लेकर आये। उन्होंने बेटी से कहा– बेटी चलो, मैं तुम्हें भाई के पास राखी बाँधने के लिए ले चलता हूँ और चल दिया अनाथ आश्रम। वहाँ जाकर बेटी से कहा– देखो, कितने सारे आपके भाई हैं। सभी के हाथ में राखी बाँधों और मिठाई खिलाओ। बहिन के लिए भाई मिल गये और भाइयों के लिए बहिन। सभी भाई, बहिन को पाकर अत्यन्त खुश हुए। यह है सही सच्ची सहृदयता और सच्चा रक्षाबंधन पर्व।

रक्षाबंधन मुक्ति का पर्व है। रक्षाबंधन वात्सल्य का पर्व है।
रक्षाबंधन हरीतिमा का पर्व है। रक्षाबंधन खुशहाली का पर्व है।
रक्षाबंधन भाईचारे का पर्व है। रक्षाबंधन सौहार्द्र का पर्व है।
यज्ञ समाप्त कर यज्ञोपवीत का पर्व है।

अधर्म पर धर्म की विजय का पर्व है।
मानमर्दन का पर्व है। धर्म रक्षा करने का पर्व है।
माया को मात देने का पर्व है।
हिंसा पर अहिंसा की विजय का पर्व है।
रक्षा की शिक्षा का पर्व है। प्रकाश के प्रेरक होते हैं पर्व।
जोड़ने वाले होते हैं पर्व।

कविता

रक्षाबंधन सभी मनाते, धर्म की रक्षा करने को।
दुक्खों से प्राणी जो दुक्खित, उनके वह दुःख हरने को।।
मुनियों पर उपसर्ग हुआ जो, विष्णुकुमार ने दूर किया।
दुष्ट प्राणियों को हटने पर, मुनिवर ने मजबूर किया।।1 ।।

हम भी उनके अनुयायी हैं, सबको हम समझायेंगे।
माँस और मदिरा खाते जो, उनसे वह छुड़वायेंगे।।
माँस और मदिरा खाते क्यों, नरक गति में पड़ने को।
प्राणी मात्र सब भाई हमारे, करुणा उन पर आप करो।।2 ।।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और, परिग्रह यह ना पाप करो।
पाप कर्म जो भी करते हैं, जीवन भर दुःख पाते हैं।।
मौत बुरी होती है उनकी, दुर्गति में वह जाते हैं।
नरभव को हमने पाया है, सब पापों से डरने को।।3 ।।

रक्षासूत्र बाँध हाथों में, यह संकल्प करेंगे।
प्राणी घात न करने देंगे, न ही स्वयं करेंगे।।

काँटा चुभता जब पैरों में, पग भी रख न पाते हैं।
उनको दुःख कितना होगा जब, गर्दन पर छुरी चलाते हैं।।4 ।।

जन्म लिया क्या उन जीवों ने, बिना मौत ही मरने को।
मरने के पहले देखो वह, कितने आँसू बहाते हैं।।
छुरियाँ चलते ही वह प्राणी, जोर-जोर चिल्लाते हैं।
शायद वह चिल्लाकर कहते, तुम भी काटे जाओगे।।5 ।।

गला कटाकर परभव में तुम, ऐसा ही दुःख पाओगे।
सोच नहीं पाते क्या इतना, अक्ल गई क्या चरने को।।
बहनें राखी कहती बाँधकर, मेरी तुम रक्षा करना।
निज पत्नी को छोड़कर सारी, बहनों के दुःख को हरना।।6 ।।

रक्षासूत्र कहते हैं तुमसे, तुम क्षत्रिय हो रक्षक हो।
क्यों हरते हो प्राण किसी के, नहीं कोई तुम भक्षक हो।।
'विशद' सिन्धु हम चले सभी अब , यह भव सागर तरने को।
रक्षाबंधन सभी मनाते, धर्म की रक्षा करने को।।7 ।।

हहहह●●●हहहह

न कोई हँसकर सीख पाया है,
न कोई रोकर सीख पाया है।।
यदि किसी ने कुछ सीखा है,
तो गुरुदेव का होकर सीख पाया है।।

हहहह●●●हहहह

तीर्थंकर पद के सोपान

(सोलहकारण भावना का पर्व)

सोलह कारण भावना, विशद भाव से भाय।
तीर्थंकर पदवी लहे, मोक्ष महाफल पाय।।

आज से सोलहकारण पर्व प्रारम्भ हो रहा है। ये तीन शब्दों से मिलकर बना है– पहला सोलह दूसरा कारण तीसरा पर्व। सोलह संख्या है। कारण यानि साधन और पर्व यानि गाँठ, पूत, पवित्र, पावन, निर्मल, विमल इत्यादि अर्थात् जो पवित्र करे उसे पर्व कहा है। पावन कर दे उसे पर्व कहा है। गाँठ दो को जोड़ने वाली होती है अतः पवित्रता, निर्मलता, पावनता से जोड़ने वाली जो है उसे पर्व कहा है। यह पर्व सोलह हेतुओं, सीढ़ियों, साधनों द्वारा पवित्रता के धरातल की ऊँचाई तथा असीम अनन्त तक ले जाने वाला पर्व है।

पर्व को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– 1. परमार्थिक, 2. लौकिक पर्व।

परमार्थिक पर्व भी दो प्रकार के कहे गये हैं– 1. अनादि, 2. सादि। अनादि पर्व जो अनादिकाल से चले आ रहे हैं और उनका कहीं अन्त नहीं नजर आता जिन्हें शाश्वत पर्व भी कहते हैं। जिसमें सोलहकारण पर्व एक है। सादि पर्व जो इस काल में किसी घटना विशेष से प्रारम्भ हो जाते हैं। यह तीन प्रकार से कहे गये हैं– 1. राष्ट्रीय पर्व, 2. सामाजिक पर्व, 3. धार्मिक पर्व और यदि कहें तो कुछ वह भी हैं जो व्यर्थ के पर्व जैसे– होली अथवा 1 (प्रथम) अप्रैल, वेलेन्टाइन डे आदि।

हम यहाँ सोलहकारण पर्व, शाश्वत पर्व की बात कर रहे हैं, जो इंसान को भगवान बनाने का मार्ग प्रशस्त करता है। कहा भी हैह्लह्ल

सोलहकारण भाय, तीर्थंकर जे भये।
हर्षे इन्द्र अपार, मेरु पर ले गये।।

सोलहकारण भावना भाने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। भगवान के जन्म के समय सौधर्म इन्द्र सपरिवार ऐरावत पर आरुढ़ होकर सुमेरु पर्वत पर भगवान का अभिषेक करते हैं और अपना जीवन सफल बनाते हैं। सम्पूर्ण पुण्य का फल लोक में अरिहन्त अवस्था को ही माना गया।

सोलहकारण भावनाएँ तीर्थंकर पद की हेतु हैं।
भव सागर पार कराने के लिए पावन सेतु हैं।।
विश्व विभव समाया है भावनाओं में प्यारे भाई।
सोलह कारण भावनाएँ मोक्ष महल की केतु हैं।।

यह सोलहकारण पर्व महान् सुर वृक्ष है। जिस वृक्ष का तना सम्यक्दर्शन विशुद्धि और डालियाँ हैं शेष भावनाएँ, जिसकी जड़ आस्तिक्य व्रत समितियाँ इत्यादि हैं। वृक्ष के पत्ते गुणों का समूह है और तीर्थंकर पद है इस वृक्ष के सुन्दर फल।

सोलहकारण भावना में दर्शन विशुद्धि धरातल की भाँति है। जिस प्रकार धरातल के अभाव में वृक्ष की उत्पत्ति हेतु बीज, खाद्य, जल, बाढ़ इत्यादि का कोई महत्त्व नहीं है। जिस प्रकार धरातल के अभाव में भवन निर्माण सम्भव नहीं। धरातल होने पर तो इंसान का निवास संभव है। धरातल के अभाव में भवन निर्माण के हेतु नींव, पत्थर, सीमेन्ट, रेत, लोहा, खिड़की, दरवाजा, लकड़ी, जाली, अलमारी, छत, फर्श, प्लास्टर,

पुताई, रैलिंग आदि सब भवन निर्माण के हेतु नहीं हो सकते। उसी प्रकार दर्शन विशुद्धि के अभाव में विनय सम्पन्नता आदि भावनाएँ तीर्थंकर प्राप्ति में कारण भूत नहीं हो सकती हैं। तीर्थंकर प्रकृति में कारणभूत एक नहीं, अनेक कारण, साधन, सीढ़ियाँ हेतु प्रत्यय हैं। जो सोलहकारण के नाम से जानी जाती हैं। कार्य से कारण अधिक श्रेष्ठ होता है; क्योंकि **'कारणानुसारी कार्य'** कारण के अनुसार ही कार्य होता है। कारण के अभाव में नहीं। जैसे– जड़ के अभाव में वृक्ष और फल की प्राप्ति नहीं होती है।

1. दर्शनविशुद्धिह्न मात्र सम्यक्दर्शन नहीं है। दृष्टि में निर्मलता होना दर्शनविशुद्धि है। यह तत्त्व चिंतन से प्राप्त होती है तथा भेद विज्ञान के सद्भाव में होना सम्भव है। दर्शनविशुद्धि चतुर्थ गुणस्थान से आठवें गुणस्थान के प्रथम भाग तक हो सकती है। लोककल्याण की भावना होने पर ही तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव बन्ध होता है। एक जगह पढ़ा था– भगवान महावीर जब राजा नन्द की पर्याय में थे तो उनके मन में विश्वकल्याण की भावना उत्पन्न हुई थी तभी तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ था। यह निकाचित बन्ध है। जो सिद्ध अवस्था तक ले जाने वाला है। दर्शनविशुद्धि भावना चार अवस्थाओं में पाई जा सकती हैह्न 1. कषाय का मंदोदय, 2. भगवान के सम्मुख, 3. अप्रकाश दशा, 4. मरणकाल।

2. विनय सम्पन्नताह्नह्न विनय वह गुण है जो इंसान के रोम–रोम को पुलकित कर देता है। विनय आत्मीय गुण है, मोक्षमार्ग की सीढ़ी है। जिस पर चढ़कर इंसान मोक्ष मंजिल पर आरुढ़ हो जाता है। विनय गुण को जहाँ सोलहकारण भावना में दूसरे स्थान पर रखा है तो सम्यक्ज्ञान के अंगों में भी विशेष महत्त्व दिया गया है अभ्यन्तर तप में भी दूसरे स्थान पर ही स्थान

दिया गया। विनयशील व्यक्ति अपने हाथ जोड़कर सिर झुकाता है तो सामने वाले व्यक्ति को अनायास ही झुक जाना पड़ता है। हाथ जोड़ना लोगों में अपने प्रति जोड़ने की शिक्षा देता है। विनय वह रसायन है जो प्रत्येक मर्ज को ठीक करने में सार्थक होता है। अतः विनय गुण कर्म को नाश कर आत्म–विकास का सेतु बनता है। विनय वह सोपान है जिस पर आरुढ़ होकर साधक मुक्ति की मंजिल तक जाता है। विनय गुण मंथन से प्राप्त हो सकता है। विनय का अर्थ– अन्दर से समान।

3. अनातिचार शील व्रतह्नह्न शील का अर्थ है– स्वभाव और स्वभाव की प्राप्ति हेतु अतिचार रहित व्रत पालन करना **'शीलव्रतेस्वनतिचार'** कहा। इसका अर्थ है कि जीवन अनुशासित हो, शान्त हो, सुशील हो। यहाँ पर आचार्यों ने निरतिचार कहा अनाचार नहीं, इससे सिद्ध होता है निर्दोष, अनाचार का अर्थ है, व्रत–विहीन तो हमारा जीवन व्रत–विहीन नहीं, व्रतवान होगा तभी हम तीर्थंकर पद की ओर अग्रसित हो सकेंगे। व्रत तो वही है जो स्वयं को सुखी और शान्त कर सके तथा औरों के साथ, स्वयं को भी तिरा दे अन्यथा निरतिचार शील व्रत नहीं हो सकता।

4. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगह्नह्न यह तीन शब्दों से मिलकर बना है। अभीक्ष्ण+ज्ञान+उपयोग इसका अर्थ है–निरन्तर ज्ञान का उपयोग करते रहना; क्योंकि ज्ञान आत्मा का लक्षण है। ज्ञान आकाश की तरह सर्व चैतन्य में व्याप्त है, अदृश्य है। सतत् पवन की तरह प्रवाहमान है, उसे रोकना असम्भव है। मात्र दिशा परिवर्तन ही सम्भव है। ज्ञान वह गुण है जो जीव के पास तादात्म रूप से स्थित है, न अलग था न अलग है और न कभी हो सकता है। ज्ञान राख में दबी हुई अग्नि की तरह होता है। जैसे ही अग्नि के ऊपर से राख अलग होती है। अग्नि अपनी रोशनी चमक

देना प्रारम्भ कर देती है। प्रकाश तो मात्र सामने की बाह्य वस्तु में काम करता है; किन्तु ज्ञान गुण ऐसा है जिसके द्वारा पत्थर में स्वर्ण, तिल में तेल, दूध में घृत को भिन्न माना जा सकता है। अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग ही ऐसा साधन है जिसके माध्यम से शरीर और आत्मा को भिन्न समझ आत्मानुभूति और चारित्रिक विकास होता है।

6. संवेगह्लह्ल संवेग का अर्थ–संसार से भय होना अथवा धर्म और धर्म के फल में हर्ष भाव होना। अंधकार से प्रकाश में आने का नाम है संवेग। वह परम उदासीन दशा है जहाँ न हर्ष है ना विषाद बल्कि चैतन्य जागृति है, सजगता है। संवेग का प्रारम्भ अपने लक्ष्य की ओर सतत् बढ़ते रहने के लिए होता है। जो सत् श्रावक से वीतरागी साधक तक वृद्धिंगत होता रहता है। संवेग आत्मा के अनन्त गुणों में से एक गुण है, सम्यक्दर्शन के 4 गुणों में से एक गुण है, सम्यक्दृष्टि का अलंकरण है।

6. यथाशक्ति त्यागह्लह्ल शक्ति की सीमा को पार न करना और साथ ही अपनी शक्ति को नहीं छिपाना इसे यथाशक्ति कहते हैं। यथाशक्ति त्याग को 'शक्तितस्त्याग' कहते हैं। शक्ति के अनुरूप त्याग करना ही शक्तितस्त्याग कहलाता है। पहले आत्मा में वैराग्य भाव आना चाहिए तब बाह्य पदार्थ के प्रति अनाशक्ति और उनका त्याग आसान हो जाता है। त्याग आने पर ही चैतन्य में चमक आना सम्भव है। लोग दान को त्याग मानते हैं; किन्तु त्याग अन्तर में लगी रागानुवृत्ति को छोड़ना ही वास्तविक त्याग कहा गया हैह्लह्ल

त्याग की बात तो हर कोई किया करता है।
सत्य का नारा हर कोई दिया करता है।।

उतारे कथनी को करनी बनाकर अपने जीवन में।
ऐसा महावीर कोई–कोई हुआ करता है।

7. यथाशक्ति तपह्लह्ल अपनी शक्ति को छिपाये बिना मोक्षमार्ग में उपयोगी तपानुष्ठान करना यथाशक्ति तप है। इच्छाएँ प्रत्येक व्यक्ति के पास हैं; किन्तु इच्छा का निरोध तप द्वारा ही सम्भव है। यदि इच्छाओं का निरोध नहीं हुआ तो ऐसा तप भी तप नहीं कहा जायेगा। दोषों की निवृत्ति के लिए तप औषधि है, मिट्टी तपकर ही पूज्य बनती है। सोना तपकर ही कुन्दन बनता है। दूध तपकर ही शुद्ध घृत रूप होता है। उसी प्रकार आत्मा तप से कंचन हो जाती है, शुद्ध होती है।

8. साधु समाधिह्लह्ल यहाँ समाधि का अर्थ मरण से है। साधु का अर्थ है श्रेष्ठ, अच्छा अर्थात् श्रेष्ठ, आदर्श मृत्यु को साधु समाधि कहते हैं। साधु का दूसरा अर्थ 'सज्जन' से है अतः सज्जन के मरण को भी साधु समाधि कहते हैं। तपोनिष्ठ साधुओं के ऊपर आगत आपत्तियों का निवारण करना तथा ऐसा प्रयत्न करना जिससे संतों के जीवन में कोई आपत्ति ही न आवे जिससे वे स्वस्थ रहें। समाधि में न राग है न द्वेष, न हर्ष है न विषाद है। इस हर्ष विषाद से भिन्न आत्म सत्ता की सतत् अनुभूति ही साधु समाधि है।

9. वैय्यावृत्तिकरणह्लह्ल वैय्यावृत्ति का अर्थ है– सेवा–सुश्रुषा, अनुग्रह, उपकार। गुणी पुरुषों की साधना में आने वाली कठिनाइयों, बाधाओं को दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न करना एवं उनकी सेवा–सुश्रुषा करना वैय्यावृत्तिकरण है। 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में वैय्यावृत्ति का लक्षण इस प्रकार कहा हैह्लह्ल

व्यापत्ति व्यपनोदः पदयो संवाहनं च गुण रागात्।
वैय्यावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम्।।

अर्थात् गुणों से प्रेम करते हुए आत्म–कर्त्तव्य समझकर व्रती जनों का दुःख दूर करना, थकावट दूर करने के लिए उनके पैर दबाना और किसी अन्य प्रकार से उपकार करना वैय्यावृत्ति है।

10. अरिहन्त भक्तिह्ल अरिहन्त भगवान के द्वारा ही मोक्षमार्ग का उपदेश मिला है; क्योंकि वे प्रभु केवलज्ञान प्राप्त करते ही मोक्ष के सन्निकट पहुँच गये। इसलिए उनके गुणों में अनुराग करना, पूजना–स्तुति इत्यादि करना, गुणगान करना। क्योंकि गुणगान से गुणवान बना जा सकता है और गुणवान ही विद्वान कहा जाता है। 'अर्हतीति अर्हत्' अर्थात् जो पूज्य है उनकी उपासना, उनकी पूजा, उनकी आराधना करना आदि इसको अर्हत् भक्ति कहते हैं। भक्ति आसक्ति और मुक्ति से रहित विरक्ति की ओर ले जाने वाली होती है।

11. आचार्य भक्तिह्ल बिना गुरु के सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, इसलिये सच्चे निरपेक्ष और हितैषी उपदेशक समस्त संघ के नायक शिक्षा–दीक्षादि देकर निर्दोष मार्ग पर चलने वाले आचार्य महाराज के गुणों की सराहना करना, उसमें अनुराग करना। आचार्य जो आचारवान होकर आचारवान बनाते हैं वही भक्ति और पूजा करने में योग्य कहे गये हैं। आचार–पालन हेतु अधिक बल दिया गया है। आचार में धर्म का सार समाहित है। कहा भी हैह्ल

आचारः परमो धर्मः आचारः परमो तपः।
आचारं परमं ज्ञानं आचारः किम् न साधयेत्।।

अर्थात् आचार ही परम धर्म है, आचार ही परम तप है, आचार ही परम ज्ञान है तो आचरण की साधना क्यों न करें?

12. बहुश्रुत भक्तिह्ल बहुश्रुत का तात्पर्य उपाध्याय परमेष्ठी से है। उपाध्याय ये तीन शब्दों से मिलकर बना है। उप+अधि+आय। 'उप' माने बहुत समीप अर्थात् सन्निकट और 'आय' माने आना अर्थात् जिनके जीवन का सम्बन्ध अपने शुद्ध गुणपर्याय से है जो अपने शुद्ध गुणपर्याय के साथ अपना जीवन चला रहे हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं। उनकी पूजा, उपासना या अर्चना करना ही बहुश्रुत भक्ति कहलाती है। जिसमें श्रुत का बहुमान छुपा है। श्रुतज्ञान कल्याण का हेतु है। जो स्वयं मुक्ति मार्ग पर चल रहे हों वही मुक्ति मार्ग का उपदेश दे सकते हैं। वह प्रत्येक सत् इंसान के लिए संसार की निरर्थकता को दिखाते हुए संसार के चक्रव्यूह से बचने का ढंग बताते हैं। वह उस मार्ग के पथगामी हैं। अतः उसका प्रभाव भी विशेष पड़ता है; क्योंकि वह सत् पथ के साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं।

13. प्रवचन भक्तिह्ल वचन और प्रवचन में बड़ा अन्तर है। जो साधारण शब्द हम बोलते हैं, वे वचन हैं। प्रवचन में प्र शब्द प्रकृष्ट अर्थात् विशेष कल्याणकारी शब्द हैं। जिन वचनों का सम्बन्ध सांसारिक पदार्थों से न होकर उस अनमोल निधि से है जो अन्दर है। अज्ञान का अभाव एवं ज्ञान प्राप्त करके जो विशेष शब्द खिरते हैं, बोले जाते हैं, वे शब्द प्रवचन कहलाते हैं। आत्मानुभूति के लिए किये गये विशेष प्रयास को प्रवचन कहते हैं।

14. आवश्यक अपरिहारिणीह्ल यह दो शब्दों से मिलकर बना है–आवश्यक और अपरिहारिणी अर्थात् आवश्यक कार्यों को निर्दोष रूप

से सम्पन्न करना। मनुष्य जीवन आवश्यक कार्य करने के लिए मिला है, अनावश्यक कार्यों में खोने के लिये नहीं। जो पाँच इन्द्रियों और मन के वश में नहीं है, वह अवश है और अवसी द्वारा किया गया कार्य आवश्यक कहलाता है और कर्त्तव्य का अर्थ करने योग्य कहा जाता है।

15. धर्म प्रभावनाह्ह अपने ज्ञान और आचरण से मोक्षमार्ग का प्रचार–प्रसार करना, वह मार्ग जिसके द्वारा आदमी शुद्ध–बुद्ध बने, उस सत्यमार्ग मोक्षमार्ग की प्रभावना ही 'मोक्ष प्रभावना या धर्म प्रभावना' है। **'मृग्यते येन यत्र वा स मार्गः'** जिसके द्वारा खोज की जाए उसे मार्ग कहते हैं। जिस मार्ग में भूली हुई चेतना का परिज्ञान हो, जिसमें आत्मत्य की प्राप्ति हो जाए। यहाँ पर उस मार्ग की चर्चा की गई है जो मोक्ष अहिंसा का मार्ग है।

अज्ञान तिमिर व्याप्ति मपाकृत्य यथायथम्।
जिन शासन माहात्म्य, प्रकाशः स्यात् प्रभावना।।

अर्थात् अज्ञान के तिमिर को यथाशक्ति स्त प्रयासों से दूर करके जिनशासन को प्रकाशित करना ही प्रभावना है। जो अज्ञानमय हो वह प्रभावना कैसे कर सकता है?

16. प्रवचन वात्सल्यह्ह प्रवचन वात्सल्य का अर्थ है–साधर्मियों के प्रति करुणाभाव। **''वत्से धेनुवत्स–धर्मणि स्नेह प्रवचनवत्सलत्वम्''** जिस प्रकार से गाय बछड़े पर स्नेह रखती है। उसी प्रकार से साधर्मीजनों से निश्छल–निष्काम स्नेह रखना प्रवचन वात्सल्य है। बड़ा आश्चर्य है, आचार्यों ने वात्सल्य के उदाहरण में गाय का बछड़े के प्रति वात्सल्य कहा, किसी स्त्री का नाम लेते, किसी पुरुष का नाम ले लेते किन्तु पशु में ही क्या विशेषता है? जो पशु का नाम लिया, इसका मतलब सीधा है कि

मनुष्य चाहे पुरुष हो या स्त्री, उसका वात्सल्य राग पूर्ण है, आकांक्षापूर्ण है। इससे सिद्ध होता है कि धर्मी से जो वात्सल्य हो वह किसी प्रकार की चाह और कामना से रहित गुण ग्राह्यतापूर्ण हो वही सच्चा वात्सल्य है, वही सच्चा धर्म है।

कहने का तात्पर्य है कि इन पर्वों में जो उपवास किए जाते हैं, देखने में तो कष्टदायक लगता है; किन्तु यही आगे चलकर मोक्ष की ओर अग्रसर करते हैं। पर्व का तात्पर्य है– जोड़ने वाला। यह पर्व भी आत्मा और परमात्मा से जोड़ने का कार्य करता है।

प्यारे बन्धु ! दर्शन प्राप्त करना भी पहले बहुत पुरुषार्थ का फल कहा गया है तो वह अमूल्य रत्न है जो गहरे समुद्र के तल में छुपा है। उसे पाना आसान नहीं है। निरन्तर भायी गई प्राणी कल्याण की भावना का ही फल होता है। जब दर्शनविशुद्धि प्राप्त होती है। यदि अपने जीवन में दर्शनविशुद्धि के लाभ की इच्छा है तो प्राणीमात्र का भला करना प्रारम्भ कर दीजिए, लाभ अपने आप ही हो जाएगा। भला उलटने पर लाभ बन जाता है उसी प्रकार भला उलटकर लाभ रूप में मिलता है। उसे पाने के लिए कहीं भटकने और ठोकर खाने की आवश्यकता नहीं है और दर्शनविशुद्धि आने पर शेष भावनाएँ खुद–ब–खुद आपके पास आ जाएँगी। जिस प्रकार व्यक्ति किसी को दान देने हेतु वस्तु उठाता है तो उसके हाथ तो पहले अपने आप ही भर जाते हैं।

यह पर्व हमारे जीवन को गुणों से भरने व रोशनी से चमकाने के लिए आते हैं।

ह्हह्हह्ह●●●ह्हह्हह्ह

वीर निर्वाणोत्सव
(दीपावली)

प्यारे बन्धु ! आज के दिन को हम सुख का दिन कहें या दुःख का, खुशी का दिन कहें तो भी नहीं जमता; क्योंकि हमारे परम आराध्य का वियोग हुआ और दुःख का दिन कहें तो भी नहीं जमता। क्योंकि आज के दिन भगवान महावीर निर्वाण पाकर मोक्ष गये। इस पावन और पवित्र दिन को भगवान महावीर अपने लक्ष्य को प्राप्त हुए। प्यारे भाई ! अपनी जिन्दगी का निर्माण करना जीवन का सार है। जिसकी जिन्दगी में निर्माण नहीं, उसका निर्वाण हो ही नहीं सकता। क्या मन्दिर, मस्जिद का निर्माण करना है? किसका निर्माण करना है? जिन्दगी का निर्माण करना है। देश का, शहर का, गाँव का, भवन इत्यादि किन-किन चीजों का निर्माण कर रहे हैं। जब तक यह निर्माण होता रहेगा तब तक आपका निर्वाण नहीं हो सकता। एक-दूसरे के विपरीत और विरोधाभाषी हैं। हमने आज तक तन-मन-धन का निर्माण किया। आजकल के मानव पंचेन्द्रियों के विषयों की सुबह से लेकर शाम तक पूर्ति करने में लगे रहते हैं। महिलायें चौके में और कारीगर कारीगरी में, लोग अपनी दुकान या सर्विस इत्यादि निर्माण करते रहते हैं। वह वास्तव में निर्माण नहीं है। हमें अब अपना निर्माण करना है। वह कैसे होगा? हमें अपने आपको खोजना है। अपने स्वरूप तत्त्व को, अपनी चेतना को खोजना है। स्वयं के निर्माण में द्रव्य कौन पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल हैं। इन द्रव्यों को न पहचान पाये तो हमारा निर्माण होने वाला नहीं है। 'छहढाला' में पंडित दौलतरामजी ने कहा हैह्न

मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रता।
सम्यक्ता न लहैं सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रता।।

जिसकी द्रव्य के प्रति आस्था, श्रद्धान, रुचि, प्रतीति रूप ज्योति जल गई। श्रद्धान हो गया उसी का उत्थान, निर्माण होता है। इंसान उसके पीछे दौड़ता है, जो उसका नहीं है। **''जो दिखाई दे रहा वह आपका नहीं है। जो आपका है वह आपको दिखाई नहीं देता। विशद पाना उसी को है।''** उसको प्राप्त करने की कोशिश करें। उस अमूर्त को नेत्रों से नहीं ज्ञान नेत्र से देखा और जाना जा सकता है। जिसके लिये सफाई या निर्माण करते हैं, वह तो नश्वर है।

दीपावली के दिन मकान (महल) में प्रवेश करना शुभ है; लेकिन कौन से मकान में, महल में प्रवेश शुभ है जिस मोक्ष महल में भगवान महावीर ने प्रवेश किया, उसमें प्रवेश पाना शुभ है। लोग ऐसा भी मानते हैं कि दीपावली मनाने की परम्परा तभी से चली है। दीपावली मनाने के संबंध में अनेकों मान्यताएँ प्रचलित हैं। उनमें से एक पौराणिक मनोहर कथा उपलब्ध होती है जो एक विदुषी देवी की सूझ-बूझ, धैर्य एवं कुशलता पर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डालती है। महीपति- हेमराज के प्रथम पुत्र हुआ, जो सर्वांग सुन्दर तथा बहुत ही भाग्यशाली था; किन्तु देश के माने हुए राज-ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि राजुकमार रूप, गुण एवं कला-संपन्न है। परन्तु दुर्भाग्य से यह अपने विवाह के चौथे दिन ही मर जायेगा। इस भविष्यवाणी से राजा को बड़ा सदमा पहुँचा; किन्तु होनी को कोई नहीं टाल सकता। 'जैसा योग होगा, होकर रहेगा' ऐसा सोचकर अंत में राजा को संतोष करना पड़ा।

अस्तु वह रूपवान राजकुमार शुक्ल पक्ष में चन्द्रकला की तरह बढ़ने लगा व सुसंस्कारों को अर्जित करता हुआ पढ़ लिखकर योग्य बन गया।

राजकुमार जब बीस साल का हो गया तब भविष्यवाणी के अनुसार चिंतित होते हुए भी राजा ने स्वजनों के आग्रह एवं कर्त्तव्य विवश होकर एक विदुषी सुलक्षणवती व सच्चरित्र राजकन्या से राजकुमार का विवाह कर दिया। भारी आशंका से आशंकित नरेश ने राजकुमार की सुरक्षा के लिये समुद्र के मध्य बने सुरक्षित महल में राजकुमार के कड़े पहरे की व्यवस्था कर दी। सारे पहरेदार और स्वयं राजकुमार दंपत्ति अत्यन्त सजग व सतर्क होकर रहने लगे। मन की हीनता व कमजोर विचारों से व्यक्ति के जीवन पर भारी असर होता है। ऐसा सोचकर वे समझदार दम्पत्ति शौर्य, साहस व पुरुषार्थ से परिपूर्ण कहानियाँ कहते–सुनते हुए समय बिताने लगे।

चौथे दिन राजकन्या ने देखा कि एक भीषण नाग, भयंकर फुँकार करता हुआ उनके महल की ओर सरपट दौड़ा आ रहा है। राजकन्या ने सोचाह्न सम्पूर्ण जीवन में जो कुछ ज्ञान सीखा है, कला प्राप्त की है तथा अनुभव अर्जित किया है, उसका साक्षात् प्रयोग करने का एवं अपने व्यवहार चातुर्य एवं कला–कौशल से जीवन–धन प्रियतम की रक्षा करने का सुअवसर आ गया है। यदि इस स्वर्णिम अवसर को खो दिया तो फिर बुद्धि–कौशल तथा व्यवहार पटुता का कभी कोई उपयोग नहीं हो सकेगा गोस्वामी तुलसीदासजी की निम्न चौपाई के अनुरूप सदा–सदा के लिये धोखा हो जायेगाह्न

''तृषित वारि बिन्दु जो त्यागा, मुएँ करइका सुधा तड़ागा।
का वरषा जब कृषि सुखाने, समय गये पुनि का पछिताने।।''

विदुषी राजकन्या ने नागराज के स्वागत में बहुत कीमती इत्र रखा तथा सुमधुर कर्णप्रिय, संगीत गाकर नागराज को मुग्ध कर लिया। कवि ने बहुत ठीक कहा हैह्न

पूँजी लाओ प्रेम की, गाओ मीठी राग।
बस होने पर नाग के, भले नचाओ नाग।।

हाँ, तो राजकन्या के कुशल व्यवहार पर नाग ने प्रसन्न होकर वरदान माँगने को कहा। नागराज को वचनबद्ध करके उसने अपने प्राणप्रिय प्रियतम के प्राण एवं अपना अखण्ड सौभाग्य माँगा।

सुप्रसन्न नागदेव ने वरदान देने का अपरिवर्तनीय वचन दिया। किवदन्ती है कि– यमराज ने जब राजकुमार की शेष आयु का सूची पट देखने का प्रयत्न किया तो वे देखकर एकाएक चौंक गये व बहुत हैरान रह गये कि शून्य के स्थान पर सत्तर लिख दिया। इसका कारण यह था कि 7 के आकार में शून्य के पीछे नागराज बैठ गये। फलतः यमराज के निर्णयानुसार राजकुमार को 70 वर्ष का आयुष्य प्राप्त हुआ। कहा जाता है– नरेश हेमराज ने इस खुशी में अत्यन्त उत्साहपूर्वक दीपावली मनायी। तभी से दीपमालिका का पर्व चला आ रहा है जो विषधर जैसे शेषनाग रूप लोगों को भी सुमधुर व्यवहार से प्रसन्न करने की सुगुप्त क्षमता को जागृत करने का बहुमूल्य पाठ पढ़ाता है। कथासार है– यदि मनुष्य अपने व्यवहार को प्रेमपूर्ण बना लेता है तो विपक्षी का हृदय भी पसीज जाता है और वातावरण आनन्द से भर जाता है।

यद्यपि दीपावली का त्यौहार किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है बल्कि जन–जन का त्यौहार है। हर धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय के लोग इसे मानते हैं भले ही मनाने की परम्परा भिन्न हो सकती है।

भागवत् एवं हरिवंशपुराण के अनुसार दीपावली मनाने की पृष्ठभूमि में एक कथा प्रसिद्ध है जो आततायी, अन्यायी, बर्बर, अत्याचारी एवं अंधकार पर प्रकाश की विजय का सन्देश प्रदान करती है। कथा इस प्रकार हैह्न

प्राग ज्योतिषपुर (कामरूप देव) में नरकासुर नामक एक अत्याचारी नरेश था, जिसने अपने विशाल कारागृह में अपहृत सोलह हजार कन्याओं को कैद कर रखा था। उन कन्याओं के परिजन चिन्ताग्रस्त थे; किन्तु उन सब में नरकासुर जैसे दानव से जूझने की क्षमता नहीं थी। ऐसे समय मेंह्न

''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे।।''

गीता के श्लोक में अपने द्वारा कृत प्रतिज्ञा के अनुसार दुष्ट–दलन एवं सज्जन संरक्षण हेतु गीता के उद्गाता श्रीकृष्ण आगे आते हैं।

नरकासुर तथा श्रीकृष्ण का भीषण युद्ध होता रहा। अन्त में कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को उस प्रजापीड़क अत्याचारी का वध श्रीकृष्ण ने कर दिया। इसीलिए शायद चतुर्दशी को नरक चौदस के रूप में जाना जाता है। समस्त प्रजा ने एक प्रजापीड़क के वध से सुख की साँस ली। जनता को इतनी खुशी हुई कि उस खुशी में दूसरे दिन अमावस्या को इतने दीप जलाये कि वह अमावस्या पूर्णिमा की चन्द्र–ज्योत्सना में परिवर्तित हो गयी। लोकधारणा है कि तभी से दीपावली मनायी जाने लगी।

एक मत यह भी है कि नरकासुर ने कृष्ण से वरदान माँगा था कि उसकी मृत्यु के दिन को उत्सव के रूप में मनाया जाये और बड़ी संख्या में दीप जलाये जायें। उसकी अंतिम इच्छा पूर्ण हो गयी तभी से यह पर्व मनाया जाने लगा और भी अनेक पौराणिक व्याख्यान है जैसे– **इस दिन राम का अयोध्या आगमन व राज्याभिषेक, कृष्ण का द्वारिका गमन, पांडवों का त्रयोदशवर्षीय वनवास से इन्द्रप्रस्थ में आगमन, विक्रमादित्य का राज्याभिषेक, अशोक की कलिंग पर विजय, गुप्तकाल का उदय, महाराज पृथु द्वारा पृथ्वी का दोहन, गौतम बुद्ध को पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति, तीर्थंकर वर्धमान को निर्वाण, भारत के महापुरुष परमयोगी श्री रामकृष्ण परमहंस तथा आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानंद आदि के द्वारा दीपावली के दिन नश्वर–देह का परित्याग, सिक्खों के छट्ठे गुरु श्री हरगोविन्दसिंह की इसी दिन कारावास से मुक्ति इत्यादि।** कुछ लोगों का मानना है कि वर्षा के बाद सफाई का पर्व है आदि सम्बन्धित घटनाएँ प्रसंग अनेक मन्तव्य प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें देखते हुए अंतिम सत्य को निरूपित करना संभव नहीं है; किन्तु इतना सत्य है कि यह पर्व अन्याय एवं अत्याचार रूप, अंधकार पर न्याय एवं सदाचार रूप प्रकाश की विजय का प्रतीक स्वरूप तथा मन की मलिनता को खत्म करने की प्रेरणा प्रदायक यह पुण्य पर्व भारत की पावन धरा पर निर्मित व प्रचलित है, जो न्याय के मार्ग पर चलने का दिव्य सन्देश देता है। हमारा जीवन मंगलमय और दिव्य प्रकाश से परिपूर्ण हो सम्यक्ज्ञान की रश्मियों से ओत–प्रोत हो, यही श्रेष्ठ हेतु है। जैसे–एक कथानक आता है। एक भिखारी था वह जहाँ भी पहुँचता घर–घर में पुताई हो रही थी। वह जिस द्वार पर पहुँचता है, लोग व्यस्तता के कारण दुत्कारते हुए आगे जाने को

कहते, उसे कुछ भीख नहीं देते थे; किन्तु पेट की आग ने उसे ढीठ बना दिया।

ध्यान रखना जब भी कोई भिखारी आपके द्वार पर भीख माँगने आये तो कभी उसे दुत्कारना नहीं। उसे निराश नहीं करना। वह बहुत बड़ी शिक्षा लेकर आया है कि उसने पूर्व में अच्छा कार्य नहीं किया अतः आज भिखारी है। यदि आपने भी अच्छा कार्य नहीं किया तो हो सकता है, आपको भी भिखारी बनकर किसी के द्वार पर जाना पड़े। दीपावली के दिन आज लक्ष्मी की चाह में लोग भिखारी को दान देना भूल जाते हैं। अहंकार के आसन पर बैठकर औरों को तुच्छ मानते हैं।

एक बार लक्ष्मी ने भिखारिन का भेष बनाया। लोग उसकी दरिद्रता देखकर उसे दुत्कार देते थे। हम लोग भिखारी को लक्ष्मी के इंतजार में भगा देते हैं। उसने नगर के सारे द्वार तलाश किये। कम से कम आज के दिन तो भूखी न रहे। लक्ष्मी भिखारिन के भेष में दस्तक दे रही थी। द्वार–द्वार पर भटक रही थी। वह नगर के बाहर निकल आती है। उसको एक खेत पर झोपड़ी में रहने वाली बुढ़िया ने सम्मान सहित कहाह्न हाथ पैर धोओ और भोजन करो। उसने भोजन कर लिया और फिर बुढ़िया माँ से कहाह्न आप वरदान माँग लीजिए, मैं लक्ष्मी हूँ, जो चाहो दूँगी। बुढ़िया ने कहा कि जाओ अब हमें तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। यदि तुम यहाँ रुकी तो आपत्ति आ जायेगी। हमारी साधना बिगड़ जायेगी। लक्ष्मी ने कहा– मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी, वह एक वर्ष के लिए रुक गई। एक बार किसी दुःखी माँ ने बुढ़िया से अपनी कथा सुनाई तो उस पर रहम करके बुढ़िया ने माँ को धन दे दिया। यह सुनकर सारे नगर के लोग पहुँचने लगे। दिन–रात प्रभु भक्ति में लीन

रहने वाली बुढ़िया के द्वार पर हलचल मच गई। बुढ़िया का ध्यान समाप्त हो गया। एक वर्ष पूरा होते ही लक्ष्मी बुढ़िया से विदा लेकर चल दी। उसी वक्त नगर के प्रधान को अपनी बेटी की शादी करनी थी। उसने बुढ़िया माँ से कहाह्न माँ मुझे अपनी बेटी की शादी करनी है। कुछ धन दे दीजिए; किन्तु बुढ़िया बेचारी क्या करे लक्ष्मीजी वहाँ से जा चुकी थी। उसने कहा– बेटे मेरे पास कुछ भी नहीं है, जो देने वाली थी वह चली गई। जमींदार ने सोचा– सबके लिए तो दिया है; किन्तु मुझे मना कर रही है। उसने पुनः कहा– माँ मुझे धन दे दो वरना अच्छा नहीं होगा। बुढ़िया के मना करने पर जमींदार ने कुटिया में आग लगा दी और गालियाँ सुनाता हुआ नगर की ओर चला गया।

तब बुढ़िया ने कहा– धन्य है लक्ष्मी को, जब आती है तो हलचल मचाकर बैचेन करती है और जब जाती है तो कुटिया में आग लगाकर जाती है।

हम उस भिखारी की बात कर रहे थे। रास्ते में भिखारी जा रहा था। बड़ा जबरदस्त भिखारी था। जब तक ले नहीं लेंगे आगे नहीं बढ़ेंगे। सेठानी ने कहा– आगे जाओ। भिखारी ने कुछ देर बाद पुनः कहा– सेठजी कुछ दे दीजिए। सेठजी कहते पत्नी आ जाएगी तो दे देंगे। भिखारी कहता है– सेठजी, मुझे पत्नी नहीं चाहिए। थोड़ी देर बाद भिखारी ने पुनः कहा– कुछ दे दीजिए। सेठजी ने उत्तर दिया– अभी आदमी नहीं है। आदमी आ जायेगा तो दे देंगे। तब भिखारी ने कहा– सेठजी कुछ देर के लिए आप ही आदमी बन जाइये। सेठ चुप हो जाता है। भिखारी ने पुनः माँगा तो सेठजी क्रोधित होकर कहते हैं–

मेरे पास कुछ नहीं है। तब भिखारी बोला– आपके पास कुछ नहीं है तो चलिये हमारे साथ, दोनों मिलकर भीख माँगेंगे। सेठ दीवाल की पुताई कर रहा था, तब गुस्से में आकर सेठजी ने उसके मुँह पर पोता दे मारा।

भिखारी हाथ में पोता लिये हुए नदी में स्नान करके पोते को साफ करके उस कपड़े को फाड़कर अनेक बत्तियाँ तैयार करता है और बत्तियों को दीपक में रखकर जलाना प्रारम्भ करता है। जलती हुई लौ से निकलने वाले प्रकाश को देखकर बोलता है। **हे परमात्मा ! जिस प्रकार प्रकाश की ज्योति इस दीपक में जल रही है। उसी प्रकार की ज्योति इस इंसान में जल जाए तो मेरी दीपावली सार्थक हो जाएगी।**

कहने का तात्पर्य है– जिस प्रकार दीपक से ज्योति निकली थी, उसी प्रकार से व्यक्ति के अंतरंग से ज्ञान, ज्योति एवं प्रेम की धारा निकल जावे। बस यही सच्ची दीपावली है।

जब महावीर को वैराग्य उत्पन्न हुआ, वह घर से चल दिए। तब माता–पिता ने उनको बहुत रोका, बहुत आँसू बहाये। फिर भी जब नहीं माने तो माँ गुस्से में आकर बोलने लगी– तूने माँ की ममता को नहीं समझा, आज के बाद तुझे माँ नहीं मिलेगी, वस्त्र के नाम पर धागा भी नहीं मिलेगा, गूँगा रहेगा, भौंरे की भाँति ऊँ–ऊँ करता रहेगा, तेरी सारी दौलत को लोग लूट लेंगे, तन को पाने के लिए तरसेगा, तुझे कहीं सहारा नहीं मिलेगा, धर्माधर्म भी तेरा साथ नहीं देगा। तेरे जैसे ढीठ को खोकर अब मैं कभी माँ नहीं बनूँगी। तुझे भोजन देने वाला

संसार में नहीं रहेगा और तू भी संसार में नहीं रहेगा। तेरे मरने पर लोग लड्डू लुटायेंगे और दीपक जलाकर खुशियाँ मनायेंगे, जा चला जा।

आश्चर्य है माँ की यह गालियाँ वीर के लिए वरदान बन गईं। पुनः पृथ्वी पर जन्म लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी, उनका अंतिम मरण हो गया। आज महावीर के मरण होने पर चारों ओर खुशियाँ मनाई जाती हैं; किन्तु किसी के घर माता–पिता, स्त्री, पति, पुत्र इत्यादि का मरण हो जाए तो लोग दुःख का पर्व मान लेते हैं। कितनी विस्मयकारी बात है किसी और के पुत्र का मरण हो तो खुशियाँ और स्वयं के पुत्र का मरण हो तो दुःख यहाँ तक की लोग पर्व ही मनाना बंद कर देते हैं। पर्व ने क्या बिगाड़ दिया? मरण के पर्व को मरण होने पर मनाते नहीं हैं, कैसी अजीब बात है। मरण को नवजीवन का श्रृंगार कहा गया है। उत्तम मरण नवजीवन का चैक है। मरण तो प्रत्येक जीव का होता है। मरण यदि निर्वाण में बदल जाए तो पर्व बन जाता है। उभयलोक में खुशियों का पर्व माना जाता है।

भगवान महावीर का निर्वाण दिन जीवन में चारित्र निर्वाण की शिक्षा देता है। विश्व में कौन–सा व्यक्ति है जिसका निर्वाण नहीं हो सकता, बस उसे जीवन निर्माण की आवश्यकता है।

निर्वाण भी यहीं पर है और निर्माण भी यहीं पर है। चारित्र का निर्माण इस पृथ्वी पर होगा। अन्य स्थान पर निर्माण और निर्वाण नहीं होगा। दीपावली के दिन भगवान महावीर को सुबह के समय निर्वाण हुआ था, इसलिए निर्वाण लड्डू चढ़ाया जाता है। लड्डू गोल होता है। गोल इसलिए है; क्योंकि उसका न आदि है और न ही अन्त है। लड्डू मोक्षरूपी सुख का कन्त है। शाश्वत् सुख मोक्ष में है। प्रश्न उत्पन्न होता है

कि निर्वाण के दिन लड्डू ही क्यों चढ़ाते हैं, तो उत्तर स्वयं ही प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार लड्डू जहाँ से खायें वहीं से मीठा लगता है उसी प्रकार निर्वाण लड्डू है कि उसका मीठापन कम नहीं होता। सिद्ध अवस्था की प्राप्ति होने पर, सुख की कमी नहीं होती। जीव हमेशा सुखी रहता है।

''प्यारे बन्धु ! जिन्दगी रोशन करने का वक्त आया है। महावीर ने मंजिल की ओर बढ़ने का रास्ता दिखाया है।।''

दीपावली के दिन दीप जलाये जाते हैं। जब किसी विशेष चीज की प्राप्ति हो जाती है तो बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। बीज जब खेत में बोते हैं तो अंकुरण होकर वृक्ष बनता है, उसमें फूल खिलते हैं, फल भी लगते हैं। इंसान फूल–फल पाकर उसी में तृप्त हो जाता है। जड़ को सभी भूल जाते हैं; किन्तु जो ज्ञानी हैं वह हमेशा वृक्ष की जड़ को सींचता है, आप माली बन जाता है।

भगवान महावीर स्वामी स्वयं माली बने थे और फिर गुणों की माला बन गये जिसे ग्रहण करने हेतु सभी लालायित हैं। आज कार्तिक कृष्ण अमावस्या को भगवान महावीर स्वामी ने मुक्ति–वधू को प्राप्त किया और अनन्त आनन्द में लीन हो गये।

सायंकाल के समय में गौतम स्वामी गुरुओं के गुरु अन्दर मन में सोच रहे थे भगवान के वियोग में, अब हम कैसे जियेंगे। गौतम स्वामी भगवान महावीर के मोक्ष जाने पर परमात्म ध्यान में इतने तल्लीन हो गये कि वे तो अपने अन्दर में समा गये। ध्यान में जैसे वह **ज्ञान की ज्योति महावीर में जल रही थी**, वह गौतम स्वामी को प्राप्त हो गयी। लोगों में गम छाया था। अब हमारे लिये दिव्यदेशना, धर्मदेशना कौन देगा, यह

जानकर सभी प्रसन्नता से उछलने लगते हैं। छाया हुआ अंधकार समाप्त हो गया। लोगों ने घर–घर में दीप जलाकर खुशियाँ मनाईं। दीप जलाने से यह दीपमालिका पर्व बन गया। दीपावली का दिन एक का वियोग दूसरे का संयोग का पर्व है।

आज के दिन भगवान महावीर ने मुक्ति पाई है।
अपनी आत्मा अनन्त सिद्धों में मिलाई है।।
उस जलते हुए प्रखर दीपक से प्यारे भाई।
गौतम स्वामी ने ज्ञान की ज्योति जलाई है।।

भगवान महावीर के समवशरण में गौतम स्वामी ने गुरुता का भार वहन करते हुए वीर प्रभु की दिव्यदेशना को जन–जन में प्रवाहित कर प्राणी मात्र का कल्याण किया। उसी कल्याण की भावना से प्रभु और गुरु के चरणों में विशद नमन करते हैं।

दीपावली

दीपावली का शुभ पावन दिन, एक वर्ष में आता है।
जगमग–जगमग दीप जलाकर, ज्ञान की ज्योति जलाता है।।

मोक्ष हुआ था आज धरा से, अर्हत् महावीर स्वामी का।
वर्द्धमान गुण के सागर हैं, कथन है उन शिवगामी का।।
महावीर बिन कौन हमें अब, सम्यक् पथ दिखलायेगा।
दिव्यदेशना हम जीवों को, आकर कौन सुनायेगा।।
तेरी गौरव गाथा को हर, प्राणी जग का गाता है। दीपावली....

इस युग में तेरे आने पर, अगणित दीप जलाए थे।
देवों ने भी भू पर आकर, मंगल बाद्य बजाए थे।।
रत्न धरा पर अगणित बरसे, भू ने सुन्दरता पाई।
चमक उठा था भू–मण्डल भी, चंदन सी खुशबू आई।।
प्राणी मात्र उस क्षण पर बन्धु सुख–शांति पा जाता है। दीपावली....

जिस समय विश्व के हर कोने से, हा–हाकार मचा था।
मानव का तन–मन जीवन भी, पापों में ही पचा था।।
सन्मति ने जग के जीवों की, सत्मति आन सुझाई।
जलती थी हिंसा की ज्वाला, प्रभु ने आन बुझाई।।
श्रद्धा से जो नाम पुकारे, वह सुख–शांति पाता है। दीपावली....

विश्व शांति अरु शुद्ध भावना, वीर के कारण आई थी।
दास प्रथा में दास बने थे, उनने मुक्ति पाई थी।।
प्राणी मात्र पर सुख की बदरी, वीर जन्म से छाई थी।
प्रभु की शुभ्र सलौनी सूरत, जन–जन के मन भाई थी।।
तीर्थंकर को पाकर प्राणी, पा लेता सुख साता है। दीपावली....

सब पर प्रेम दया भावों की, अमृतमय वर्षा करते।
दुःखियों पर करुणाकर बनकर, जन–जन के दुःख को हरते।।
धर्म पंथ अपनाकर मानव, सदाचार अपनाते हैं।
चैन से रहता है फिर मानव, सबको चैन दिलाते हैं।।
असत् कार्य धर्मी मानव को, नहीं जरा भी भाता है।। दीपावली....

सुख–शांति के गीत सुनाकर, सबको गले लगाया था।
भूले थे जो निज वैभव को, उसका ज्ञान कराया था।।
सर्वोदय सिद्धांत सुनाकर, शुभ आदर्श बताया है।
अमर नहीं है इस धरती पर, लेकर जन्म जो आया है।।
यह जग एक अनोखा झूला, फिर–फिर आता जाता है। दीपावली....

समकित की सुगंध महकी थी, महावीर की वाणी से।
शुद्धातम की कला मिली थी, हमको भी जिनवाणी से।।
निर्वाण दिवस की इस बेला पर, मेरा मन हर्षाया है।
हमको भी निर्वाण प्राप्त हो, चरणों सेवक आया है।।
'विशद' ज्ञान का दीप जलाएँ, वह मुक्ति को पाता है। दीपावली....

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

मस्तक में उठने वाले प्रश्न बूझ लिए जाते हैं।
भटके हुए रास्ते भी किसी से पूछ लिए जाते हैं।।
मोक्षगामी संत भगवन्त परम आराध्य हैं प्यारे भाई।
उनके चरण भक्ति भाव से पूज लिए जाते हैं।।

निजी स्वार्थ हेतु औरों का गला मत काँटो।
किसी के बहकावे में आके कानूनी मत छाँटो ।।
माँ का मातृत्व भाव विश्व में सबसे ऊँचा है।
वासना में वासित हो माँ की ममता को ना काँटों।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

अष्टाह्निका पर्व

आज अष्टाह्निका पर्व का प्रथम दिन है। पर्व किसे कहते हैं, पर्व क्या हैं? पर्वों की चर्चा जब भी चलती है तो उनका सम्बन्ध खाने–पीने और खेलने से जोड़ा जाता है। जैसे– रक्षाबंधन के दिन खीर और लड्डू खाये जाते हैं। खेल खेले जाते हैं, राखी बाँधी जाती हैं। होली के दिन पिचकारी से खेलते हैं, अमुक पकवान बनाकर खाये जाते हैं। दीपावली के दिन पटाखे चलाये जाते हैं आदि।

पर अष्टाह्निका और दशलक्षण जैसे पर्वों का सम्बन्ध खाने और खेलने से न होकर खाना और खेलना छोड़ने से होता है। ये भोग नहीं योग के, त्याग के पर्व हैं। इसलिए महापर्व हैं। इनका महत्त्व त्याग के कारण है। आमोद–प्रमोद के कारण नहीं। घर–घर जाकर गले मिलने के लिए नहीं।

पर्व जो पवित्र करने वाला हो, पर्व जो मंगल करने वाला हो, पर्व जोड़ने वाला होता है। पर्व का अर्थ है पवित्र और मंगलकाल। जिस प्रकार गन्ने के बीच गाँठ होती है। उसके खाने से कोई स्वाद नहीं मिलता है; किन्तु उसके बोने से 3 वर्ष तक गन्ने प्राप्त होते रहते हैं। उसी प्रकार पर्वों में उपवास, नीरस करने से वर्तमान में तो सुख नहीं मिलता; किन्तु भविष्य में स्वर्ग–मोक्षादि रूप सुख की प्राप्ति होती है।

आप किसी भी जैन से पूछिये कि अष्टाह्निका महापर्व कैसे मनाया जाता है तो यही उत्तर देगा कि इन दिनों लोग संयम से रहते हैं। पूजन–पाठ करते हैं। व्रत–नियम–उपवास करते हैं। हरित पदार्थों का सेवन

नहीं करते हैं। सभी लोग कुछ न कुछ विरक्ति धारण करते हैं, दान देते हैं आदि अनेक प्रकार से धार्मिक कार्यों में संलग्न रहते हैं। सर्वत्र एक प्रकार से धार्मिक वातावरण बन जाता है।

पर्व दो प्रकार के होते हैं– पहला शाश्वत पर्व और दूसरा सामयिक पर्व। जिन्हें हम त्रैकालिक और तात्कालिक भी कह सकते हैं।

तात्कालिक पर्वह्न तात्कालिक पर्व भी दो प्रकार के होते हैं– (1) व्यक्ति विशेष से संबंधित, (2) घटना विशेष से संबंधित।

दीपावली, महावीर जयंती, रामनवमी, जन्माष्टमी इत्यादि पर्व किसी न किसी व्यक्ति से सम्बन्धित हैं।

रक्षाबंधन, होली आदि किसी न किसी घटना से सम्बन्धित होते हैं।

शाश्वत पर्वह्न शाश्वत पर्व अनादिकाल से चलते आ रहे हैं। जैसे– दशलक्षण पर्व, अष्टाह्निका, सोलहकारण इत्यादि। यह त्रैकालिक पर्व आध्यात्मिक भावों से सम्बन्धित होते हैं।

अष्टाह्निका पर्व किसी सम्प्रदाय विशेष का नहीं है, वह तो सबका है। भले ही उसे मात्र सम्प्रदाय विशेष के लोग ही क्यों न मानते हों। पर वह साम्प्रदायिक भावनाओं पर आधारित पर्व नहीं है। उसका आधार सार्वजनिक है। विकारी भावों का परित्याग एवं उदात्तभावों का ग्रहण ही उसका आधार है, जो सभी को समान रूप से हितकारी है। अतः यह पर्व मात्र जैनों का नहीं, जन–जन का पर्व है।

यह सब का पर्व है। इसका कारण यह भी है कि संसार का प्रत्येक

प्राणी सुखी होना चाहता है और दुःख से डरता है। राग–द्वेष क्रोधादि भाव आदि दुःख के कारण हैं। दुःखों से बचने के लिए हमें राग–द्वेष इत्यादि छोड़ना और पर्वों में शक्त्यानुसार उपवास नीरस आदि व्रतों को करना है। इस प्रकार महापर्व सुख के खजाने होते हैं।

अष्टाह्निका पर्व अष्टमी से चतुर्दशी अर्थात् 8 दिन तक चलने वाला महापर्व है। यद्यपि अष्टाह्निका पर्व वर्ष में तीन बार आता है– 1. आषाढ़ सुदी अष्टमी से चतुर्दशी तक, 2. कार्तिक सुदी अष्टमी से चतुर्दशी तक, 3. फाल्गुन सुदी अष्टमी से चतुर्दशी तक। तथापि सारे देश में विशाल रूप से उत्साह के साथ मात्र आषाढ़ सुदी अष्टमी से चतुर्दशी तक ही मनाया जाता है। बाकी दो को तो बहुत से जैन लोग भी जानते तक नहीं हैं। प्राचीनकाल में बरसात के दिनों में आवागमन की सुविधाओं के पर्याप्त साधन न होने से व्यापारादि कार्य सहज ही कम हो जाते थे तथा जीवों की उत्पत्ति भी बरसात में बहुत होती है। अहिंसक समाज होने से जैनियों के साधुगण तो चार माह तक एक गाँव से अन्य गाँव में भ्रमण बन्द कर एक स्थान पर ही रहते हैं। श्रावक भी बहुत कम भ्रमण करते हैं। अतः सहज ही संत समागम एवं समय की सहज उपलब्धि ही विशेष कारण प्रतीत होते हैं। भाद्रपद में भी पर्यूषण पर्व आता है, इसको विशाल पैमाने पर मनाया जाता है।

अष्टाह्निका महापर्व में इस समय पर आठवें द्वीप में जिसे नन्दीश्वर कहा जाता है। नंदी का अर्थ है– बैल। बैल को वृषभ कहते हैं। वृषभ का अर्थ धर्म भी होता है अर्थात् बैल जिनका चिह्न है, वृषभ जिनका नाम है, उन्होंने जिनधर्म का प्रवर्तन किया है। ईश्वर अथवा परमात्मा,

अतः जिन्होंने धर्म के द्वारा परमात्म पद को पाया है, ऐसा नन्दीश्वर द्वीप है।

जिस प्रकार द्वीप समुद्र के बीच ऊपर उठे हुए स्थान को कहते हैं अथवा जो चारों ओर जल से घिरा स्थल है, उसे द्वीप कहते हैं। उसी प्रकार संसार सागर में रहते हुए भगवान ऊपर उठे होते हैं और ऊपर उठने का उपदेश देते हैं। अष्टाह्निका पर्व 8 कर्मों को नष्ट कर 8 गुण प्राप्त करने के लिए अग्रसर करता है और अष्टम पृथ्वी ईषत् प्राग्भार (सिद्धशिला) को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है।

जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन का है। भुवन विख्यात नन्दीश्वर समुद्र से वेष्टित जम्बूद्वीप से आठवाँ द्वीप नन्दीश्वर द्वीप है। उस द्वीप का मण्डलाकार विस्तार एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख (1638400000) योजन प्रमाण है। गंध और महागंध नामक दो नन्दीश्वर द्वीप के प्रभु हैं। नंदी और नंदीप्रभ नामक दो देव नन्दीश्वर समुद्र की रक्षा करते हैं।

जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु पर्वत एक लाख योजन का है। चूलिका 40 योजन की, मोटाई एक हजार योजन की है। नन्दीश्वर द्वीप में, चारों दिशाओं में, चार अंजनगिरि पर्वत हैं। अंजन अर्थात् काजल के समान काले होने के कारण इन पर्वतों का नाम अंजनगिरि पर्वत नाम सार्थक हुआ। अंजनगिरि पर्वत नीलमणिमय है। 1000 योजन गहरा, चौरासी हजार (84000) योजन ऊँचा और सब जगह चौरासी हजार (84000) योजन प्रमाण विस्तार युक्त समवृत्त है। चारों दिशाओं में चार बावड़ी हैं। वापिका के चारों ओर एक वन है। (अशोक, सप्तच्छद, चम्पक, आम्रवन)

वन में एक-एक प्रासाद बना हुआ है। उसमें देव-देवियाँ व्याप्त हैं। अंजनगिरि पर्वत के चारों दिशाओं में एक-एक दधिमुख पर्वत है। दधिमुख अर्थात् दही के सदृश वर्ण वाले हैं। इसलिए दधिमुख कहते हैं। प्रत्येक पर्वत की ऊँचाई दस हजार (10000) योजन प्रमाण है। दधिमुख पर्वत के बाह्य दोनों किनारों में चारों दिशाओं में दो-दो रतिकर हैं। इस प्रकार से एक दिशा में कुल मिलाकर 8 पर्वत होते हैं। रतिकर अर्थात् गुमची के सदृश लाल वर्ण वाले होते हैं, इसलिए रतिकर कहते हैं। प्रत्येक रतिकर का विस्तार एक हजार योजन (1000) ऊँचाई भी एक हजार योजन (1000), नींव गहराई 250 योजन प्रमाण है। इस प्रकार एक दिशा में अंजनगिरि उसके चारों कोने में चार दधिमुख हैं, उनके बाह्य दोनों एक दिशा सम्बन्धी 13 पर्वत और उन पर जिनालय हैं, इसी प्रकार चारों दिशा में होने से 52 जिनालय हो जाते हैं।

अंजनगिरि, दधिमुख, रतिकर पर्वत सभी पर्वतों पर एक-एक जिनालय बना हुआ है। ये जिनालय अकृत्रिम जिनालय हैं। इन्हें किसी ने बनाया नहीं है। एक-एक जिनालय में 108-108 पद्मासन में विराजमान प्रतिमाजी हैं। सभी प्रतिमाएँ 500 धनुष ऊँची होती हैं। प्रतिमा कैसी हैं, उसकी शोभा किस प्रकार से है, इसका वर्णन नन्दीश्वर पूजा में किया हैह्लह्ल

लाल नख मुख नयन स्याम अरु श्वेत हैं।
श्याम रंग भौह सिर केश छवि देत हैं।।
वचन बोलत मनो हँसत कालुष हरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमो सुख करं।।

उन बावन्न प्रतिमा के लाल नख और मुख हैं। आँखें श्वेत और काली

हैं, भौंहें श्याम रंग की हैं, केश काले हैं। प्रतिमा इस प्रकार से लग रही हैं मानो हँसते हुए बात करती हैं। दूसरों के कालुष को हरण करने वाली हैं।

चारों प्रकार के देव नन्दीश्वर द्वीप में आते रहते हैं। सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी पर आरुढ़ होकर, दिव्य विभूति से विभूषित होकर हाथ में पवित्र **नारियल** लिए हुए भक्ति से आता है। ईशान इन्द्र उत्तम हाथी पर आरुढ़ होकर, उत्कृष्ट रत्न विभूषणों से सुशोभित होकर, हाथ में **सुपारी फलों के गुच्छे** लेकर आता है। सानतकुमार उत्तम सिंह पर आरुढ़ होकर नवीन सूर्य के सदृश कुण्डलों से विभूषित होकर हाथ में **आम्र फलों के गुच्छे** लिए हुए आता है। माहेन्द्र इन्द्र श्रेष्ठ घोड़े पर आरुढ़ होकर हाथ में **केले** लेकर भक्ति से यहाँ आता है। ब्रह्मेन्द्र हँस पर आरुढ़ होकर **खिला हुआ कमल** लेकर आता है। ब्रह्मोत्तर इन्द्र **क्रौंच पक्षी पर आरुढ़ होकर खिला हुआ कमल** लेकर आता है। लान्तव इन्द्र हाथों में **बादाम के गुच्छों** को लेकर यहाँ भाव सहित आता है। शुक्रेन्द्र चक्रवाक पर आरुढ़ होकर **सेवन्ती पुष्प** हाथ में लिए आता है। महाशुक्र तोते पर आरुढ़ होकर **फूलों की माला** लिए हुए आता है। शतार इन्द्र कोयल वाहन पर आरुढ़ होकर **नीलकमल पुष्प** हाथ में लिए आता है। सहस्रार इन्द्र भी गरुड़ विमान पर सवार होकर **अनार के फलों के गुच्छे** लेकर भक्ति भाव से यहाँ आता है। (ति.प. आ.शिवकोटि)

चारों प्रकार के देव नाना प्रकार के वाहनों पर आरुढ़ होकर विभूति सहित, फल-पुष्प मालाएँ लेकर भक्ति भाव से नन्दीश्वर द्वीप में पूजन करने के लिए आते हैं। भक्ति में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि 8 दिन का समय 8 पल की भाँति निकल जाता है। वहाँ पर दिन-रात का भेद नहीं होता। कल्पवासी

देवों सहित सौधर्म इन्द्र पूर्व दिशा में, भवनवासी देवों सहित धरणेन्द्र दक्षिण दिशा में, व्यन्तर देवों सहित किम्पुरुष इन्द्र पश्चिम दिशा में, पूजा करते हैं। 2–2 पहर बाद घूम–घूम कर प्रभु की भक्ति पूजा अर्चना 8 दिन तक करते हैं। देवगण मृदंग, भेरी, पटहादि बाजे बजाते हैं और देवकन्याएँ विविध प्रकार से नृत्य करतीं हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर नन्दीश्वर द्वीप में चार अंजनगिरि पर्वत, 16 दधिमुख पर्वत, 32 रतिकर पर्वत हैं। 52 जिनालय वहाँ अवस्थित हैं। प्रत्येक जिनालय में 108 प्रतिमाएँ हैं अतएव सभी जिनालयों में 5616 अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप में सभी देव अपनी विभूति सहित इच्छित फलों को लेकर पूजन, भक्ति, आराधना करते हैं। हम देव नहीं हैं, वहाँ जा नहीं सकते; किन्तु देवों जैसे भाव बनाकर अष्टाह्निका पर्व में स्थापना निक्षेप से नन्दीश्वर द्वीप की रचना करके पूजन, दान करने से असीम पुण्य संचय कर जीवन सफल बना सकते हैं।

कविता

सिद्धचक्र मण्डल विधान यहाँ, सुन्दर शुभम् सजाया है।
पंच परमेष्ठी की भक्ति को, सबने मिलकर पाया है।।

पूजन भक्ति करने हेतु, अपना कदम बढ़ाते हैं।
अष्ट द्रव्य का थाल सजाकर, पद में श्रेष्ठ चढ़ाते हैं।।
परमातम की भक्ति करने, इन्द्र सभी सजकर आते।
बाद्य ध्वनि के साथ मिलकर, सुन्दर गीत यहाँ गाते।
आरति करने हेतु हाथ में, सुन्दर दीप जलाया है। सिद्ध.....

मनहर मूर्ति लखकर प्रभु की, फूले नहीं समाते हैं।
वीर प्रभु के पद पंकज में, भव्य भ्रमर ही आते हैं।।
मानव मन में खिली यहाँ पर, सुन्दर फूल की फुलवारी।
पुष्प बीज से सजा रहे हैं, श्रावक गण अनुपम क्यारी।।
शुद्ध भाव से पूजन करके, जीवन सफल बनाया है। सिद्ध.....

श्रीपाल का कोढ़ नशा था, इस विधान के ही द्वारा।
आकर देखो आँख खोलकर, लगता है कितना प्यारा।।
प्रभु के दर्शन कर लेने से, निज का दर्शन होता है।
उठकर हो जा खड़ा यहाँ तू, पड़ा हुआ क्यों सोता है।
'विशद' ज्ञान के पाने हेतु, प्रभु को हृदय बसाया है। सिद्ध.....

सिद्धचक्र मण्डल सिद्धों की, श्रेणी में ले जाता है।
वर्तमान में इच्छित फल दे, अन्तिम कर्म नशाता है।।
भक्ति कर लो पुण्य कमा लो, आया उत्तम मौका है।
सोच समझ लो मेरे बन्धु, श्वाँस–श्वाँस में धोखा है।।
धन–दौलत की चकाचौंध में, कितना समय गँवाया है। सिद्ध.....

माया–मोह के चक्कर में ही, दिन और रात डोलता है।
अमृत के धोखे जीवन में, तीव्र जहर को घोलता है।।
जीवन पर जीवन यह दुनियाँ, अपने यूँ ही खोती है।
मोह नींद में आज की दुनियाँ, आँख मीचकर सोती है।
'विशद' काल बीता है यूँ ही, हाथ में कुछ नहीं आया है। सिद्ध.....

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

नया वर्ष

नये वर्ष में नये गुलों से, खिली रहे मन की फुलवारी।
नया ओज और नई चेतना, नये वर्ष की हो बलिहारी।।
स्वप्न नये साकार सभी हों, जो भी मन में आये हमारे।
पूरे हों अरमान सभी बस, यही भावना विशद हमारी।।

प्रातः का सूर्य जब पूर्व में उदय होता है तो उसके पूर्व ही पक्षी गाने लगते हैं और चारों ओर रोशनी फैलने लगती है। लोग अपना बिस्तर छोड़कर नित्य क्रिया से निवृत्त होते हैं; किन्तु यह परम सत्य है कि स्नान के बाद जो ताजगी आती है वह ताजगी दिन में दुबारा प्राप्त नहीं होती और वह ताजगी का समय परमात्मा की आराधना के लिए समर्पित होता है। ब्रह्म की आराधना का समय है इसलिए ब्रह्ममुहूर्त कहा जाता है।

परमात्मा की आराधना व्यक्ति के सारे दिन को मंगलमय बना देती है। जैसा कि कोई भी शुभ कार्य प्रारम्भ किया जाता है तो उसके पूर्व मंगलमय मुहूर्त भी देखा जाता है और मंगलाचरण पूर्वक या मंगल द्रव्य के प्रयोग पूर्वक ही कार्य का आरम्भ किया जाता है। मंगलाचरण पूर्वक किया गया कार्य या मंगल मुहूर्त में किया गया कार्य सारे अनुष्ठान में मंगल खुशबू बिखेर देता है। सफलता को प्राप्त कराने वाला होता है। उस समय हमारे जीवन में प्रत्येक प्रभात मंगलमय होती है और यदि अनुष्ठान का प्रारम्भ किसी अमंगल बेला में या अमंगल कार्य पूर्वक करने पर अमंगल ही होगा। आज नव वर्ष का प्रारम्भ है, सोते हुए यदि नव प्रभात होगा तो सारा वर्ष सोते हुए बीत जाएगा और यदि परमात्मा की आराधनापूर्वक नव वर्ष में प्रवेश किया जाएगा तो सारा वर्ष मंगलमय होगा।

केकड़ी से एक महिला हमारे पास आती थी हमेशा एक ही रोना रोती रहती थी कि हमारे श्रीमान् जी मंदिर नहीं जाते, पूजा नहीं करते। इस वर्ष में प्रवेश के समय आशीर्वाद लेकर दम्पति गये तो पाया कि पूरे वर्ष यह मंदिर गये और समय-समय पर उल्टे पत्नी को पूजा करने के लिए बुलाकर ले जाते थे। लोग जिन्दगी में खुशियों को पाने के लिए धन-दौलत खर्च करते हैं; किन्तु खुशियाँ धन-दौलत से नहीं परमात्मा की आराधना से एवं मंगलमय वातावरण व व्यवहार से प्राप्त होती हैं।

''नये वर्ष की नई किरण से स्वर्णिम हुआ सबेरा है।
चन्द्रप्रभु के चरण-कमल में शत्-शत् अभिनन्दन मेरा है।।
नये वर्ष में नवजीवन का सूत्रपात अब करना है।
स्वयं हृदय में नई चेतना विशद भाव से भरना है।।''

इंसान प्रतिदिन नये-नये आविष्कार करता है, नव-निर्माण करता है इस चाहत से कि कुछ नयापन मिलेगा; किन्तु अन्त में वह सब पुराना हो जाता है और पुनः नये की खोज प्रारम्भ हो जाती है; किन्तु नये जैसा कुछ प्राप्त नहीं होता। अब नये की खोज के लिए हमें आध्यात्म की ओर ध्यान देना होगा। जो हमारे जीवन में एक अपूर्व स्फूर्ति प्रदान करेगा। नया यदि कुछ है तो वह है हमारी चेतना की खोई हुई निधि। उस निधि को एक बार भी प्राप्त कर सके तो हमारे जीवन के सभी नये वर्ष मंगलमय हो जाएंगे।

लोग नव वर्ष के अवसर पर सभी प्रकार के भेदभाव को भूलकर एक हो जाते हैं। मस्ती के रंग में भाव-विभोर होकर नाचते हैं, गाते हैं क्या परिचित क्या अपरिचित। सभी से गले मिलते हैं और सब मिल-

बैठकर चर्चाएँ करते हैं। एक साथ रंग बरसाते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि मात्र कुछ समय के लिए मस्ती में झूम लिया, एक साथ बैठ लिया, बस नई साल हो गई।

इसका मतलब यह है कि जिस प्रकार नये वर्ष के आगमन पर सभी प्रकार की कलुषता को भूलकर एक दिल हुए हैं, उसी प्रकार पूरे वर्षभर अपना प्रेम बाँटना सीखें। हृदय को विशालता देकर प्राणी मात्र का दुःख दर्द अपना सा समझें। जब हम एक दिल हो चुके तो उसके दिल की पीड़ा हमें कष्ट देगी। अतः अपने दिल को कोई पीड़ा नहीं देना चाहता है। इंसान नव वर्ष आने की खुशी और नव वर्ष मनाने के जोश में होश खो बैठता है।

एक साथ मिलकर नाचने–गाने का भी अर्थ यह नहीं है कि हम सभी एक परिवार के सदस्य हो चुके हैं और अपने परिवार के जैसा व्यवहार प्रत्येक नागरिक के साथ हो तथा जिस प्रकार अनेक रंग अलग–अलग होकर भी बरसाने पर एकमेक हो जाते हैं। क्या लाल, क्या काला, क्या पीला, क्या सफेद सभी मिल जाते हैं। उसी प्रकार हम भी एक हो जाएँ तो बड़ा समूह होकर किसी भी बुराई को ढका जा सकता है और एक नई ताजगी को पाया जा सकता है।

तात्पर्य यह है कि नव वर्ष में पुरानी संकीर्णता, स्वार्थ और ईर्ष्या इत्यादि को छोड़कर हृदय की विशालता, नई चेतना, नई जागृति, नया ओज, नया उत्साह, नई उमंग, नया रंग–ढंग, नया गुलशन, नई फुलवारी, नई प्रभात, नई राहें, नई दिशा, नये रोमांच को आमंत्रण देना है। तभी हमारा नव वर्ष का प्रवेश मंगलमय होगा।

इतिहास विषयक इस प्रकरण में जैनागम के रचयिता आचार्यों का, साधुसंघ की परम्परा का, तात्कालिक राजाओं का तथा शास्त्रों का ठीक–ठीक काल निर्णय करने की आवश्यकता पड़ेगी, अतः संवत्सर का परिचय सर्वप्रथम पाना आवश्यक है। जैनागम में मुख्यतः चार संवत्सरों का प्रयोग पाया जाता है– 1. वीर निर्वाण, 2. विक्रम संवत्, 3. ईसवी संवत्, 4. शक संवत्; परन्तु इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य संवतों का व्यवहार होता है जैसे– 1. गुप्त संवत्, 2. हिजरी संवत्, 3. मघा संवत् आदि।

वीर निर्वाण संवत्

भगवान महावीर की उम्र बहत्तर वर्ष प्रमाण काल को पन्द्रह दिन और आठ महीना अधिक पिचहत्तर वर्ष में से घटा देने पर वर्धमान जिनेन्द्र के मोक्ष जाने पर जितना चतुर्थ काल का प्रमाण (या पंचम काल का प्रारम्भ) शेष रहता है, उसका प्रमाण होता है। अर्थात् तीन वर्ष आठ महीने और पन्द्रह दिन।

साधरणतया वीर निर्वाण संवत् विक्रम संवत् में 470 वर्ष का अन्तर रहता है। परन्तु विक्रम संवत् के प्रारम्भ के सम्बन्ध में प्राचीनकाल से बहुत मतभेद चला आ रहा है, जिसके कारण भगवान महावीर के निर्वाण काल के सम्बन्ध में भी कुछ मतभेद उत्पन्न हो गया है। उदाहरणार्थ– नन्दी संघ की पट्टावली में आचार्य इन्द्रनंदी ने वीर के निर्वाण से 470 वर्ष पश्चात् विक्रम जन्म और 488 वर्ष पश्चात् उसका राज्याभिषेक बताया है। इसे प्रमाण मानकर बैरिस्टर श्री काशीलाल जायसवाल वीर निर्वाण के काल को 18 वर्ष ऊपर उठाने का सुझाव देते हैं; क्योंकि उनके अनुसार

विक्रम संवत् का प्रारम्भ उसके राज्याभिषेक से हुआ था। परन्तु दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ही आम्नाओं में विक्रम संवत् का प्रचार वीर निर्वाण के 470 वर्ष पश्चात् माना गया है। इसका कारण यह है कि सभी प्राचीन शास्त्रों में शक संवत् का प्रचार वीर निर्वाण के 605 वर्ष का अन्तर प्रसिद्ध है। दूसरी बात यह भी है कि ऐसा मानने पर भगवान वीर को प्रतिस्पर्धी शान्ता के रूप में महात्मा बुद्ध के 12–13 वर्ष तक साथ–साथ रहने का अवसर भी प्राप्त हो जाता है; क्योंकि बोधि लाभ से निर्वाण तक भगवान वीर का काल उक्त मान्यता के अनुसार ई.पू. 557–527 आता है जबकि बुद्ध का ई.पू. 588–544 माना गया है (जै.सा.ई.पू. 303)

विक्रम संवत् निर्देशह्रह्र

यद्यपि दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों आम्नायों में विक्रम संवत् का विक्रम के जन्म से प्रारम्भ होता है अथवा उनके राज्याभिषेक से या मृत्युकाल से, इस विषय में मतभेद है। दिगम्बर के अनुसार वीर निर्वाण के पश्चात् 60 वर्ष तक भूपालक का राज्य रहा, तत्पश्चात् 155 वर्ष तक नन्द वंश का और तत्पश्चात् 225 वर्ष तक मौर्य वंश का, इस समय में ही अर्थात् वीर.नि. 470 तक ही विक्रम का राज्य रहा। परन्तु श्वेताम्बर के अनुसार वीर निर्वाण के पश्चात् 155 वर्ष तक भूपालक तथा नन्दका तत्पश्चात् 225 वर्ष तक मौर्य वंश का और तत्पश्चात् 60 वर्ष तक विक्रम का राज्य रहा। यद्यपि दोनों का जोड़ 470 वर्ष आता है तद्यपि पहली मान्यता में विक्रम का राज्य मौर्यकाल के भीतर आ गया है और दूसरी मान्यता में वह उससे बाहर रह गया है; क्योंकि जन्म के 18 वर्ष पश्चात् विक्रम का राज्याभिषेक और 60 वर्ष तक उसका राज्य रहना

लोक–प्रसिद्ध है, इसलिये उक्त दोनों ही मान्यताओं से उसका राज्याभिषेक वि.नि. 510 में और जन्म 392 में प्राप्त होता है। परन्तु नन्दी संघ की पट्टावली में उसका जन्म वी.नि. 470 में और राज्याभिषेक 488 में कहा गया है, इसलिये विद्वान् लोग उसे भ्रान्तिपूर्ण मानते हैं। (विशेष जानकारी हेतु जिनेन्द्र सिद्धांत कोष देखें)

इसी प्रकार विक्रम संवत् को जो कहीं–कहीं शक संवत् अथवा शालिवाहन संवत् मानने की प्रवृत्ति है वह भी युक्त नहीं है; क्योंकि ये तीनों संवत् स्वतंत्र है। विक्रम संवत् का प्रारम्भ वी.नि. 470 में होता है, शक संवत् का वी.नि. 605 में और शालिवाहन संवत् का वी.नि. 741 में।

शक संवत् निर्देशह्रह्र

यद्यपि 'शक' शब्द का प्रयोग संवत् सामान्य के अर्थ में भी किया जाता है। जैसे वर्द्धमान शक, विक्रम शक, शालिवाहन शक इत्यादि और कहीं–कहीं विक्रम संवत् को भी शक संवत् मान लिया जाता है; परन्तु जिस 'शक' की चर्चा यहाँ करनी है वह एक स्वतंत्र संवत् है। यद्यपि इसका प्रयोग प्रायः लुप्त हो चुका है। तदपि किसी समय दक्षिण देश में इस ही का प्रचार था; क्योंकि दक्षिण देश के आचार्यों द्वारा लिखित प्रायः सभी शास्त्रों में इसका प्रयोग देखा जाता है। इतिहासकारों के अनुसार भृत्यवंशी गौतमी पुत्र राजा सातकर्णी शालिवाहन ने ई. 79 (वी.नि. 606) में शक वंशी राजा नरवाहन को परास्त कर देने के उपलक्ष्य में इस संवत् को प्रचलित किया था। जैन शास्त्रों के अनुसार वीर निर्वाण के 607

वर्ष 5 मास पश्चात् शक अनुसार राजा की उत्पत्ति हुई थी। इससे प्रतीत होता है कि शकराज को जीत लेने के कारण शालिवाहन का नाम ही शक पड़ गया था, इसलिए कहीं-कहीं शालिवाहन संवत् को ही शक संवत् कहने की प्रवृत्ति चल गई; परन्तु वास्तव में वह इसमें पृथक् एक स्वतंत्र संवत् है जिसका उल्लेख नीचे किया गया है। प्रचलित शक संवत् वीर-निर्वाण के 605 वर्ष पश्चात् और विक्रम संवत् के 135 वर्ष पश्चात् माना गया है।

शालिवाहन संवत्

शक संवत् का प्रचार आज प्रायः लुप्त हो चुका है तदापि जैसा कि कुछ शिलालेखों से विदित है। किसी समय दक्षिण देशों में इसका प्रचार अवश्य रहा है। शक के नाम से प्रसिद्ध उपर्युक्त शालिवाहन यह पृथक् है; क्योंकि इसकी गणना वि.नि. 746 वर्ष पश्चात् मानी गई है।

ईसवी संवत्

यह संवत् ईसा मसीह के स्वर्गवास के पश्चात् यूरोप में प्रचलित हुआ और अंग्रेजी साम्राज्य के साथ सारी दुनिया में फैल गया। यह आज विश्व का सर्वमान्य संवत् है। इसकी प्रवृत्ति वीर निर्वाण के 725 वर्ष पश्चात् और विक्रम संवत् से 57 वर्ष पश्चात् होनी प्रसिद्ध है।

गुप्त संवत्

इसकी स्थापना गुप्त साम्राज्य के प्रथम सम्राट चन्द्रगुप्त ने अपने राज्याभिषेक समय ईसवी 320 अर्थात् वी.नि. के 846 वर्ष पश्चात् की थी, इसका प्रचार गुप्त साम्राज्य पर्यन्त ही रहा।

हिजरी संवत्

इस संवत् का प्रचार मुसलमानों में है, क्योंकि यह पैगम्बर मुहम्मद साहब के मक्का-मदीना जाने के समय से उनकी हिजरत में विक्रम संवत् 650 में अर्थात् वी.नि. के 1120 वर्ष पश्चात् स्थापित हुआ था। इसी को मुर्हरत या शाबान सन् भी कहते हैं।

म.पु. 79/399 कल्की राजा की उत्पत्ति बताते हुए कहा है कि दुषमा काल प्रारम्भ होने के 1000 वर्ष बीतने पर मघा नाम के संवत् में कल्की नामक राजा होगा। आगम के अनुसार दुषमा काल का प्रादुर्भाव वी.नि. के 3 वर्ष 8 मास पश्चात् हुआ है। अतः मघा संवत्सर वीर निर्वाण के 1003 वर्ष प्राप्त होता है। इस संवत्सर का प्रयोग कहीं भी देखने में नहीं आता।

सर्व संवत्सरों का परस्पर सम्बन्ध

निम्न सारणी की सहायता से कोई भी एक संवत् को दूसरे में परिवर्तित किया जा सकता है।

निर्वाण –	नि.	1 पूर्व	470 पूर्व	527 पूर्व	846 पूर्व	1120	
विक्रम	वि.	470	1	57	135	376	650
ईसवी-	ई.	527	57	1	78	319	593
शक-	श.	605	135	78	1	249	515
गुप्त-	गु.	846	376	319	241	1	274
हिजरी-	हि.	1120	650	564	535	274	9

(जैन सिद्धान्त कोष भाग-1 के अनुसार)

कविता

नये वर्ष की नई किरण से, स्वर्णिम हुआ सबेरा है।
नये सूर्य की नई प्रभा को, शुभ अभिनन्दन मेरा है।।

नया–नया उत्साह भरा है, नई–नई हैं आशाएँ।
नये वर्ष में नई उभरेंगी, सारे जग में आभाएँ।
प्रभु का दर्शन करके तोड़ें, पड़ा मोह का घेरा है।।1।।

नया ओज हो गया तेज हो, नई स्फूर्ति हो मन में।
परमातम का हृदय वास हो, बाधा न हो जीवन में।
नये वर्ष में तोड़ सकें हम, महत् कर्म का डेरा है।।2।।

नया योग हो नये लोग हों, नये–नये अरमान सजे।
नये–नये हों गीत मनोहर, नये–नये संगीत बजे।
नई बात यह आज मान लो, जीवन रैन बसेरा है।।3।।

नया देश हो नया भेष हो, नया मार्ग संसार मिले।
नया ध्यान हो नया ज्ञान हो, नये–नये शुभ सुमन खिले।
नई साधना नई चेतना, 'विशद' लक्ष्य ये तेरा है।।4।।

नया ढंग हो नई उमंग हो, नया लक्ष्य हो नई कला।
नया–नया संदेश वीर का, प्राणी मात्र का करे भला।
नया रूप धारण कर रोके, मोह कर्म का फेरा है।।5।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

भजन

(तर्ज– आया कहाँ से जाना...)

नया वर्ष आया खुशियों को लाया, नये गीत गाओ भाई।
ताली बजाओ।।

1. नये वर्ष में नये फूलों का, हमको बाग लगाना है।
नये गुणों को पाकर अपना, जीवन नया बनाना है।
नया वर्ष आया गुरुवर को पाया, नये गीत गाओ भाई।।

2. देव–शास्त्र–गुरु की भक्ति कर, अतिशय पुण्य कमाना है।
मूलगुणों का पालन करके, सत् श्रावक बन जाना है।
मन में ये आया गुरु ने बताया, नये गीत गाओ भाई।।

3. नये वर्ष पाकर कई हमने, व्यर्थ कार्य में गवाँ दिए।
शुभम् सुहित के काम आज तक, हमने शायद नहीं किए।
नव वर्ष पाया, नव वर्ष छाया, नये गीत गाओ भाई।।

4. नये वर्ष की नई खुशी में, दीपक नये जलाना है।
बिछुड़े हुए हमारे बंधु, मंदिर उनको लाना है।
कभी न आया उसको बुलाना, नये गीत गाओ भाई।।

5. पूजा भक्ति तीर्थ वंदना, करके हर्ष मनाएंगे।
'विशद' गुणों को पाकर जीवन, फूलों सा महकायेंगे।
मन में ये आया सबसे बताया, नये गीत गाओ भाई।।
ताली बजाओ।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

26 जनवरी (गणतंत्र दिवस)

हमारी जन्मभूमि भारत है इसलिए भारतवर्ष हमें प्राणों से भी प्यारा है। हर देश के भक्त अपने देश के लिए हर समय प्राण न्यौछावर करने को तत्पर रहता है; क्योंकि वह उसके लिए सबसे प्रिय है यह पूर्णतः सत्य है कि मेरा भारत महान् है। वह अपनी विशालता के कारण नहीं अपनी दिव्यता के कारण महान् है। **उदात्त चिंतन 'जिओ और जीने दो', 'कण–कण में भगवान है', 'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की धारणा के कारण भारत महान् है। वैसे तो कई देश भारत से अधिक शक्तिशाली और बलशाली है; किन्तु भारत को ही सोने की चिड़िया के नाम से जाना जाता था। भारत का ही नाम महानता में आता है क्यों? इसलिए कि **भारत देवभूमि है, पुण्य भूमि है, कल्याण भूमि है, अवतार भूमि है, तीर्थंकर भूमि है, साधना भूमि है, मातृभूमि है।** भारत भूमि का कोई ऐसा स्थान नहीं, ऐसा कोई भू–भाग नहीं जहाँ पर किसी महापुरुष का जन्म न हुआ हो। जहाँ पर महापुरुष ने अपना गमन नहीं किया हो। जहाँ पर महापुरुषों ने साधना न की हो, जहाँ पर तीर्थादि का निर्माण न हुआ हो, यज्ञादि का अनुष्ठान न हुआ हो।

भारत के लिए माँ भी कहा जाता है; क्योंकि सभी महापुरुषों ने भारत में जन्म लेना ही पसन्द किया है। इसका मुख्य कारण है– भारत में आर्य सभ्यता जीवित है। संसार में दो प्रकार के लोग हैं। प्रथम– जिनका खान–पान, रहन–सहन अच्छा होता है, वह आर्य मनुष्य है। जिनका खान–पान, रहन–सहन अच्छा नहीं होता, वह म्लेच्छ मनुष्य कहलाते हैं। भारत इसलिए भी महान् है कि यह भोगभूमि नहीं बल्कि योगभूमि है। भारत देश जो कभी सोने की चिड़िया कहा जाता था वही देश आज अन्य

देशों का कर्जदार बना है। इसका कारण यहनहीं है कि भारत में धन की कमी है, साधन की कमी है, सुविधाओं की कमी है। ज्ञान और बुद्धि नहीं है, पैसा नहीं है। भारत में सब कुछ है; लेकिन भारत में गरीबों के साथ सहयोग नहीं बल्कि असहयोग पूर्ण व्यवहार है। इस कारण एक इंसान दूसरे इंसान की रोजी–रोटी छीनने में लगा है।

इंसान पेट भरने के लिए दुःखी नहीं, पेटी भरने के लिए दुःखी हो रहा है। पेटी भरने वाले लोगों का पेट काट–काट कर पेटी भर रहे हैं। दुनियाँ के लोग जब भी पेटियाँ भरते हैं तो पेटी काटकर नहीं, गरीबों का पेट काट कर भरते हैं। यदि भगवान का सूत्र इंसान के अन्दर प्रवेश कर जाए तो स्वतः ही शांति का वातावरण बन जाए। इंसान सच्चे अर्थ में इंसान बन जाए वह सूत्र है **'परस्परोपग्रहो जीवानां'** अर्थात् एक जीव दूसरे जीव का उपकार करता है।

इंसान ही इंसान का दर्द जान सकता है।
डॉक्टर ही मरीज का मर्ज जान सकता है।।
आजकल लोग भूल रहे हैं माता–पिता को भी।
सच्चा पुत्र ही अपना फर्ज जान सकता है।।

एक ओर लोग गरीबी रेखा से भी नीचे हैं जिनको भरपेट भोजन उपलब्ध नहीं होता है। दूसरी ओर पूँजीवाद बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रपिता कहे जाने वाले महापुरुष महात्मा गाँधी जहाँ खादी बुनकर और पहनकर सबको समानता की ओर तथा **'सर्वे सहोदरः'** का सूत्र अपना रहे थे वहीं आज एक भिखारी है तो दूसरी ओर महलों में रहते हुए लोग गरीब लोगों के पेट काटकर पेटियाँ भर रहे हैं।

भारत देश स्वतंत्र हुआ लोगों में उल्लास छा गया। देश के सभी नेता, देशप्रेमी, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, देश की जनता ने अपनी शक्ति का, भक्ति का और युक्ति का प्रयोग कर देश को स्वाधीनता तक ला दिया; किन्तु प्रश्न उत्पन्न हुआ अब देश में भी राजाओं के राज्य का संचालन समाप्त हो गया; क्योंकि राजा एक सीमित स्थान तक रहकर अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है जबकि देश बहुत बड़ा है अतः प्रजातंत्र की बात सामने आई। मंत्री परिषद की बात सामने आई; किन्तु आज भारत की क्या नीति हो, क्या संविधान हो? इसके लिए सर्वसम्मति से संविधान का निर्माण कार्य डॉ. भीमराव अम्बेडकर के लिए सौंपा गया। भारत का संविधान जो लगभग ढाई वर्ष में तैयार हुआ। उसके बाद संविधान लागू करने के लिए मीटिंग रखी गई जिसकी अध्यक्षता राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के लिए दी गई।

संविधान की प्रथम प्रति जब गाँधीजी के सामने पेश की गई। तब सभी के मन में उत्सुकता थी कि भारत का संविधान क्या होगा? गाँधीजी ने संविधान को एक तरफ से पेज पलटकर बंदकर दिया और आँख बंद कर ली। सभी लोग गाँधीजी की ओर एकटक देख रहे थे कि गाँधीजी अब आँख खोलकर कुछ दिशा–निर्देश देंगे। इतनी बड़ी सभा के लिए एक–एक मिनिट कीमती होता है; किन्तु लगभग 5–7 मिनट तक गाँधीजी ने कुछ नहीं बोला तो सभा संचालक ने गाँधीजी की ओर इशारा करते हुए कहा– गाँधीजी संविधान का निरीक्षण आपने कर लिया है। आप कुछ निर्देश देने की कृपा करें तब गाँधीजी ने कहा– यह संविधान तो कागज का संविधान है। यह संविधान तो शासन का संविधान है। यह तो मूक संविधान है, अचेतन संविधान है किन्तु प्रत्येक इंसान जीता–जागता और बोलता हुआ संविधान है।

प्यारे बंधु ! यदि प्रत्येक इंसान अपना नैतिक कर्त्तव्य समझने लग जाए और अपने नागरिक कर्त्तव्य का पालन करने लग जाए तो इस संविधान की भी आवश्यकता न पड़े।

प्यारे भाई ! कितना सार और सत्य छुपा है इन शब्दों में, अपने कर्त्तव्य का पालन ही सबसे बड़ा संविधान है; किन्तु कर्त्तव्यविहीन के लिए कोई संविधान नहीं होता। देखा भी जाता है जो देश धर्म, समाज, इंसानियत की मर्यादाओं को जानता और मानता है वही संविधान का पालक है; किन्तु नहीं मनाने वाला इंसान की कोटि में ही नहीं आता।

नैतिक नियमों का पालन, शैतान नहीं गुणवान करते हैं।
जिज्ञासाओं के समाधान, मूर्ख नहीं विद्वान् करते हैं।।
पशुओं का कोई संविधान, कोई नियमावली नहीं है।
हर संविधान और नियम का पालन, हैवान नहीं इन्सान करते हैं।।

हम आपसे पूछना चाहते हैं क्या पशुओं का कोई संविधान है? अथवा चोर, लुटेरे, शराबी, जुँआरी, व्यसनी लोगों के कोई संविधान है, नहीं न। ऐसे लोग तो संविधान का पालन करते नहीं, उनसे तो डंडे की दम पर कराया जाता है। इंसान के लिए डंडा की आवश्यकता नहीं होती। डंडे की चोट पर तो पशु चलते हैं। संसार में दोनों प्रकार के लोग निवास करते हैं, कुछ सज्जन है तो कुछ दुर्जन हैं। सज्जन और दुर्जन का कहीं जन्म नहीं होता है। सज्जन और दुर्जन तो संस्कार और संगति से बनते हैं। दुर्जनों से सज्जनों की सज्जनता हताहत न हो अतः संविधान को 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया। भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है अतः भारतीय संविधान ने सभी के हितों को

ध्यान में रखते हुए धार्मिक और नैतिकता को विशेष बल दिया गया है। भारतीय संविधान पूर्णरूप से अहिंसक संविधान है। जहाँ इंसान के हितों को तो ध्यान में रखा ही गया है, पशुओं के जीवन को भी ध्यान में रखा गया है। किन्तु आज के भौतिकवादी युग में इंसान ने संविधान को अपनी चाहत का खिलौना बनाकर रख लिया है। जब चाहे जिस प्रकार का चाहे उस प्रकार से तोड़–मरोड़ कर मनमर्जी से कार्य करते रहते हैं। गीत संविधान के गाये जाते हैं, पर करते अपनी मनमानी हैं।

ऋषियों का कथन है कि इस पावन भूमि पर जन्म लेने के लिए देवता तक स्वर्ग में तरसते हैं क्योंकि यह भूमि मोक्ष व अपवर्ग प्राप्त करने की राह है इसके सामने स्वर्ग के सारे वैभव व्यर्थ हैं।

मुक्तक

बड़े–बड़े शास्त्र पढ़के क्या होगा, कोई मंत्र–तंत्र गढ़ के क्या होगा।
ऋषि भूमि भारत में जन्म पाया हमने, स्वर्गों में इससे बढ़के क्या होगा।।

प्राचीनकाल में भरत नामक एक प्रतापी चक्रवर्ती राजा हुआ था जिसका प्रताप सूर्य की तरह सारे भुवन में व्याप्त था। उसने अपने बल व विक्रम से अखंड भारत की स्थापना की। जम्बूद्वीप या आर्यावर्त्त के सारे निवासियों को एकता के सूत्र में बाँधा। सारी जनता को उसने अपने पुत्रके समान प्यार दिया। सारे नगर की व्यवस्था, देखरेख करना राजा का कर्त्तव्य माना जाता है। भरत के नाम से ही आर्यावर्त्त या जम्बूद्वीप का नाम भारत पड़ा। भारत की भावी संतति भारतीय कहलाई। तब से लेकर आज तक इसे भारत नाम से जाना जाता है। हिन्दू सभ्यता की बहुलता के कारण मुस्लिम शासनकाल के समय से इस देश को हिन्दुस्तान कहते

हैं। अंग्रेजों ने इसका नाम 'इंडिया' रख दिया था। किन्तु भारत के संविधान में इस देश को 'भारत' नाम ही दिया गया। अब यह भारत नाम से ही प्रसिद्ध है।

भारत को आज भी प्रकृति ने अपने संसाधनों द्वारा सर्व–संपन्न बना रखा है; परन्तु आजादी प्राप्त करने के बाद भी भारत उतनी प्रगति नहीं कर पाया जितनी होना चाहिए थी; क्योंकि कोई भी देश कुशल शासक व देशभक्त शासकों के अभाव में उन्नति ही नहीं कर सकता है। आज परिस्थितियाँ इस प्रकार हो गई है कि भारत में सदाचार और नीति का दिन–प्रतिदिन ह्रास हो रहा है।

'पराधीनता सपनेहु सुख नाहीं' की उक्ति प्राणीमात्र पर लागू नहीं है। पशु–पक्षी आदि प्राणी भी स्वाभाविक रूप से सदैव स्वतंत्र रहकर जीवनयापन करना चाहते हैं। फिर मनुष्य तो सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है वह दूसरे के आधीन रहकर जीवनयापन नहीं कर सकता है। सैकड़ों वर्षों तक भारत पराधीन रहा। गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए संघर्ष होते रहे हैं; लेकिन वे प्रयासपूर्ण सफल नहीं हो पाये। 1857 ई. में हुए आन्दोलन को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जाता है। इसमें रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब, ताँत्याटोपे, मंगल पाण्डे आदि का त्याग व बलिदान उल्लेखनीय है। उसके बाद 1885 ई. में भारतीय कांग्रेस की स्थापना की गई। इस संगठन के माध्यम से लक्ष्य प्राप्ति तक निरन्तर संघर्ष चलता रहा जिसमें अनेक भारतीय सपूतों के त्याग, तपस्या व बलिदान की अमर कथाएँ जुड़ीं हैं। इस देश को स्वतंत्र करने के लिए जहाँ महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक 'शांतिपूर्ण' आन्दोलन चलाया था तो वीर मंगल सिंह,

चन्द्रशेखर आजाद, नेताजी सुभाषचंद्र बोस आदि देशभक्तों ने आत्म बलिदान द्वारा क्रांति का शंखनाद किया। जिसमें भारत के अनेक सपूत शहीद हुए, अनेक पत्नियाँ विधवा हुईं, अनेक बच्चे अनाथ हुए। यहाँ तक कि चारों ओर खून की होलियाँ खेली गईं। तब कहीं हमारे लिए आजादी प्राप्त हुई। 15 अगस्त 1947 को आजादी का हमारा संघर्ष समाप्त हुआ और हम सबने मुक्त गगन में उड़ान भरी। आज राष्ट्रीय पर्वों के दिनों में चाहे वह 26 जनवरी हो या 15 अगस्त; राष्ट्रीय सपूतों के प्रति श्रद्धांजलि व्यक्ति की जाती है।

आजादी के पहले ही देश के नेताओं ने प्रजातंत्र पद्धति अपनाने के लिए संविधान बनाया जिसको बनाने में लगभग ढ़ाई–तीन वर्ष लग गए। 1946 ई. से संविधान बनना प्रारम्भ हुआ और 1949 ई. में बनकर यह तैयार हो गया। स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त 1947 से 26 जनवरी 1950 गणतंत्र दिवस तक लगभग 2 वर्ष साढ़े पाँच माह का अन्तराल पड़ा था। इस संविधान को 26 जनवरी, 1950 ई. को लागू किया गया। तब से प्रतिवर्ष 26 जनवरी को हमारे देश में गणतंत्र दिवस मनाया जाता है।

हिन्दुस्तानी ही हिन्दुस्तान की संस्कृति खोते जा रहे हैं।
स्वयं ही अपनी करतूत से काँटों के बीज बोते जा रहे हैं।।
महावीर राम और गाँधी के आदर्श कब देखने को मिलेंगे।
क्योंकि अब भारत देश में रक्षक ही भक्षक होते जा रहे हैं।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

महावीर जयन्ती

प्यारे–2 धर्मस्नेही बन्धुवर ! महान् आत्माओं का जन्म और जीवन अपने तथा दूसरों के कल्याण के लिए होता है; उनमें एक प्रकार की दिव्य शक्ति आलोकित रहती है जो सामान्य जनों में नहीं देखी जाती है। कर्त्तव्य–परायणता ही उनकी ढाल होती है। ऐसी महान् आत्माएँ हर समय प्रकट नहीं होती हैं। यह दूसरी बात है कि हम लौकिक अल्पज्ञ जन किसी विशेष व्यक्ति में आत्म–उत्थान, संयमादि गुणों की आभा को देखकर उसे महात्मा कहने लगें; परन्तु वे आत्माएँ जिनमें यह गुण चरम सीमा को पहुँच चुके हों, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुके हों, विशेष समय पर ही प्रकट होती है। इसमें संदेह नहीं कि पहले पूर्व जन्मों में वे आत्माएँ महान् आत्माएँ नहीं थी; परन्तु यह सत्य और निश्चित है कि उनने अपने पूर्व जीवनों में 'महान् आत्मा' के सम्पूर्ण गुणों को प्रकट करने के लिए प्रयत्न किया और आज आत्म गुण को प्रकट कर लिया। उनने दया, प्रेम, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य आदि का पालनकर क्रोध, मद, मोह, लोभ, पाप, काम आदि विकारों को त्यागकर अपने में 'महानत्त्व' के गुणों का प्रादुर्भाव कर लिया। ऐसी महान् आत्माएँ एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल में 24 ही होती हैं। भगवान महावीर उनमें से अन्तिम महान् आत्मा थे।

भगवान महावीर का जीवन घोर अंधकार में ऊषा के समान प्रकाश पुँज था। जिस समय चारों ओर घोर चीत्कार और हा–हाकार मच रहा था। बेचारे निरपराध मूक पशु धर्म के नाम पर यज्ञों में जलाये जा रहे थे। अश्वमेघ और नरमेघों का आतंक छाया हुआ था। मानव पशुओं की भाँति

खरीदे और बेचे जाते थे। सती प्रथा के नाम पर स्त्रियों को जला दिया जाता था। लोग मोह और भ्रम के गहरे गर्त में पड़े हुए त्रास पा रहे थे और धर्म के रहस्य को भूल गये थे। उस समय भगवान महावीर का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान महावीर के जीवन का मुख्य उद्देश्य आत्मविशुद्धि अथवा मुक्ति प्राप्त करना था। पहले उद्देश्य के कारण जीवात्मा जीवन–मरण के चक्र से छूटकर अमरत्व को प्राप्त करता है और विशुद्धि के कारण संसार में प्रेम और दया का स्रोत बह निकलता है।

भगवान महावीर का जीवन आलौकिक घटनाओं से पूर्ण है जो साधारण जनों की समझ में एकाएक नहीं आता; परन्तु भगवान की आत्मशक्ति पर उनके आत्मबल पर, उनके विश्व–प्रेम के भाव पर और उनके अनन्त गुणों पर विचार करने से उन घटनाओं का रूप और कारण सहज ही समझ में आ जाता है। पूर्ण महान् आत्माओं के लिए इस लोक और परलोक में कोई भी बात असंभव नहीं है। आत्मगुणों का कोई ऐसा ही प्रभाव है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और त्याग की ऐसी ही महिमा है, आत्मज्ञान में ऐसी ही शक्ति है। भगवान सत्य, अहिंसा, त्याग, संयम, ज्ञान और तप की साक्षात् मूर्ति थे। उनके इन गुणों की प्रशंसा समकालीन अनेक व्यक्तियों ने की। उनका लक्ष्य इन्द्रियजन्य एवं काल्पनिक सुखों का भोग करना नहीं था वरन् वे उस आलौकिक पद को स्वयं प्राप्त करना चाहते थे और किया भी तथा अन्य लोगों को उसका मार्ग बताया। जिसके लिए इन्द्र और अहमिन्द्र, चक्रवर्ती और महाराज आदि पदवी की धारक आत्माएँ भी सतत् इच्छुक रहतीं हैं। जहाँ आत्मा की अवस्था सत्–चित् आनन्दस्वरूप रहती हैं। जहाँ

आत्मजन्य आत्मा में लीनता रूप सुख का सदा अनवरत योग रहता है। जहाँ शांति और आत्मिक स्वतन्त्रता का पूर्ण साम्राज्य है। जहाँ पुद्गल से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, जहाँ न जन्म है न जरा और न मरण। जहाँ न शरीर है और न शरीर से उत्पन्न भूखादि की वेदना व रोगादि की पीड़ा ही है। संक्षेप में कहा जाए कि जहाँ आत्मा ज्ञानस्वरूप परम ज्योति रूप हो जाता है। यही कारण था कि इन्द्रादि देव और चक्रवर्ती आदि मनुष्य, सिंहादि तिर्यञ्च निरन्तर भगवान की सेवा करते, उनके नाम का जाप्य करते और सदैव उनका ही ध्यान करते थे।

आज से ठीक 2604 वर्ष पहले उनने पृथ्वी तिलक भारत को अपने जन्म से अलंकृत किया था।

भगवान महावीर स्वामी चैत्र शुक्ला तेरस के दिन ब्रह्ममुहूर्त में अवतरित हुए। उसी समय इन्द्रादिक देवगण जो आत्म–ज्ञानामृत प्राप्त करने की इच्छा से भगवान के जन्म होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब भगवान का जन्म होता है उसी समय सौधर्म इन्द्र इत्यादि देवों के विमान कम्पायमान हो जाते हैं। सभी अपनी–अपनी सेना और परिकर के साथ भगवान के जन्म–गृह की ओर चल देते हैं। वे अपने उस महान् आदर्श के प्रति उनके अनन्त गुणों के प्रभाव से प्रभावान्वित होकर अपनी शक्ति प्रकट करना चाहते थे। ठीक ही है; क्योंकि सद्गुणों का महत्त्व अलौकिक होता है, उसका वर्णन करना सम्भव नहीं होता। सौधर्म इन्द्र की इन्द्राणी माँ को मायामयी निद्रा में सुलाकर तीर्थंकर बालक भगवान को अपने ऐरावत हाथी पर बैठाकर सुमेरु पर्वत के पाण्डु नामक वन में ले गये और

वहाँ पाण्डुक नाम की अर्द्ध चन्द्राकार शुभ शिला पर मणिजड़ित सिंहासन पर भगवान को बिठाकर क्षीर सागर के मिष्ठ, सुगन्धित दुग्ध के समान स्वभाव से निर्मल निर्जन्तुक जल से स्नान अर्थात् अभिषेक करते हैं। सौधर्म इन्द्र के नेत्र यह दृश्य देखने से तृप्त नहीं थे। इसलिए उन्होंने 1008 नेत्रों से उस दृश्य को देखा और खुशी में ताण्डव नृत्य किया। इन्द्र यह नहीं देख सकते थे कि उनके इष्टदेव जो प्राणी मात्र के हितैषी, आत्मज्ञान के अगाधसागर परमात्म पद को शीघ्र ही प्राप्त करने वाले महात्मा का जन्मोत्सव केवल सामान्य मनुष्य द्वारा सामान्य वस्तुओं से मनाया जाए। असाधारण व्यक्ति का सम्मान तो असाधारण ढंग से असाधारण वस्तुओं के माध्यम से किया जाता है; किन्तु तीर्थंकर भगवान के लिए देवोपनीत वस्तुओं से जन्मकल्याणक मनाया और बाल तीर्थंकर को उनके माता–पिता के पास छोड़ दिया और ताण्डव नृत्य करने के पश्चात् सभी स्वर्ग लोक वापस लौट गये। राजा सिद्धार्थ ने अपनी प्रजा सहित उत्सव मनाया। चारों तरफ खुशियाँ ही खुशियाँ मनाई गईं थीं।

भगवान नित्य प्रतिदिन चन्द्रमा की कलाओं के समान बढ़ने लगे। वे अपनी सुलभ चेष्टाओं से माता–पिता तथा परिजनों और पुरजनों का मन आनन्दित करते थे। वह लोग भी भगवान की बालक्रीड़ा को देखकर अपने को धन्य मानते थे। तीर्थंकर बालक अन्य बालकों की तरह धूल–मिट्टी आदि में बुरे खेल नहीं खेलते वरन् उनके खेल भी ज्ञानपूर्ण और शिक्षाप्रद होते थे। कभी–कभी इस मनोरम और देव दुर्लभ आनन्द का पान करने के लिए इन्द्र और दूसरे देवगण भी आते थे। वे अपने साथ स्वर्ग से उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण लाते और अपना रूप विक्रिया के द्वारा

बालकों के समान बनाकर भगवान के साथ खेलकर अपनी विक्रिया को तथा देव जीवन को सार्थक करते थे।

इस तरह भगवान का बाल्यकाल पूर्ण होकर युवा अवस्था प्रारम्भ हुई। मनुष्य जीवन में युवावस्था सबसे अधिक उत्तम और साथ ही सबसे अधिक खतरनाक अवस्था है। इस अवस्था में अनेकों साधन और कारण पापों के गहरे गर्त में गिरने को मिलते हैं। जिनसे बचना सामान्यजनों के लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य ही होता है। यही वह अवस्था है जिसके द्वारा हम चाहें तो उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ जाएँ और यदि चूकें तो पाप के नरक कुण्ड में गिर जाएँ। जिन लोगों को बाल्यावस्था में सुमाता–पिता के संयोग से सुशिक्षा मिली है या तो स्वाभाविक ज्ञानी और वैराग्य प्रिय हैं, जिन्हें इन्द्रिय दमन का अभ्यास पड़ा हुआ है। वही महानुभाव ऐसी खतरनाक खाड़ी को पार कर आनन्द–सागर तक पहुँचने में सफल मनोरथ होते हैं।

सर्व धर्मों का सार और सार्व सत्य संयम है जिसका अर्थ होता है– 'इन्द्रिय–दमन'। अनेक लोग धर्म–धर्म चिल्लाते रहते हैं, अपने से भिन्न–भिन्न धर्म के इस आन्तरिक अंग पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते और धर्मवालों को हीन, बुरा और घृणास्पद समझते हैं। इसी का यह फल है कि संसार में प्रतिदिन व्यभिचार, चोरी आदि दुर्व्यसन बढ़ते जा रहे हैं। हमारे नवयुवक वर्ग में से संयम का भाव बिल्कुल ही समाप्त होता जा रहा है। उनका और उनके माता–पिता का यह विश्वास हो गया है कि 'संयम' तो साधुओं के लिए है। अहो ! कितना अंधकार है, मानवीय जीवन का कितना भंयकर पतन है ?

भगवान महावीर मनुष्यों के लिए उच्चतम आदर्श थे। ज्ञान के तो वे अगाध सागर थे ही साथ में 'संयम' की साक्षात् मूर्ति थे। युवा अवस्था में भोग विलास की उत्तम से उत्तम सामग्री मिलने पर भी वे उससे उदासीन थे। असीम धन होने पर भी अन्याय और दुर्व्यसनों से वे कोसों दूर थे। उनके जीवन का लक्ष्य 'आत्म शुद्धि' था और उसकी साधना जीवन के सबसे सुन्दर और अमूल्य भाग युवावस्था में ही कर लेना चाहते थे। क्योंकि वृद्धावस्था में तो साधना करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। आजकल के मनुष्यों का विश्वास है कि ज्ञान, ध्यान, तप आदि वृद्धावस्था में करने योग्य है। युवावस्था में तो भोग भोगने चाहिए। यह विचार यद्यपि अपने को आस्तिक बताने वालों के भी हैं तथापि इनमें चार्वाकीय सिद्धान्त **''खाओ पिओ मौज उड़ाओ''** या Epucurian के Eat drink & be merry का विचित्र संमिश्रण है। अन्तर केवल यही है कि इन सिद्धान्तों के प्रतिपादक सर्व अवस्था में 'आनन्द भोग' करना बताते हैं और आजकल के नामधारी धर्मात्मा जीवन के एक सबसे हीन और दुर्बल अंश को छोड़कर। यह कथन भी कथन मात्र ही होता है। वस्तुतः तो वे क्रिया द्वारा अपने को चार्वाकीय सिद्ध कर दिखाते ही हैं। चार्वाक सिद्धान्त के बारे में आचार्यों द्वारा कहा गया है किह्नह्न

यावत् जीवं सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः।।

अर्थात् जब तक जियो चैन से जियो, ऋण लेकर भी घी पियो, देह तो भस्मसात होना ही है। अब पुनः जन्म होता कि नहीं यह किसने

देखा ? दृष्टान्त के तौर पर वृद्धावस्था में भी संन्यास मार्ग पर न लगकर विवाह कर लेना प्रत्यक्ष है अस्तु।

भगवान सच्चे आस्तिक थे, वे एक आस्तिक धर्म के प्रचारक थे। उनके विचार इस प्रकार कैसे हो सकते थे ? उनका विश्वास था कि संसार का सबसे अच्छा काम, जीवन का उत्कृष्ट उद्देश्य जीवन के उत्कृष्ट और सबसे अधिक उपयोगी समय में ही कर लेना चाहिए। अतः आत्मोन्नति और उसके साधन का मार्ग ज्ञान और संयम युवावस्था में ही प्राप्त कर लेना चाहिए। उनके लिए ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट मनुष्यों में देवत्व महात्मत्त्व प्रकट करने वाला था। विवाह, कमजोर मनुष्य जो इतने निर्बल हैं कि अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं कर सके, वह करते हैं व्यभिचार तो साक्षात् पाप मूर्ति, नराधम और राक्षसों का काम है। उनने विवाह–बन्धन में फँसना अस्वीकार कर दिया। भगवान अपने विश्वास के अनुसार अपना जीवन युवावस्था, गृह में रहते हुए संयम और ज्ञान की साधना में बिताने लगे। इस प्रकार भगवान ने 30 वर्ष गृह में रहकर साधना करते हुए व्यतीत किये।

जो कोई अपने जीवन का ध्येय निश्चित कर चुकता है, वह उसको प्राप्त करने के ही प्रयत्न में रहता है। भगवान महावीर कर्म, शरीर और संसार के बन्धनों से अपनी आत्मा को मुक्त कर शुद्ध करना– सिद्धि अर्थात् परमात्म पद प्राप्त करना और उसके मार्ग को दूसरी आत्माओं के हित के लिए बतलाना, अपने जीवन का उद्देश्य बना चुके थे। 30 वर्ष गृह में रहते हुए वे उसकी साधना की ओर बढ़ते रहे; परन्तु वे जानते थे कि आत्म शुद्धि–मुक्ति न तो किसी देव आदि से

माँगने से मिलती है न भक्ति से; बल्कि वह तो अपने में मिले हुए असत् कर्मों को दूर करने पर प्रकट होती है। जिस तरह सोना केवल तपाकर ही किट्ट कालिमा आदि पदार्थों से अलग किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार आत्मा तप के द्वारा ही कर्मों से जुदा की जा सकती है और तप, आत्मध्यान, आत्मा का अनुभव करते हुए आत्मा में लीन हो जाने पर होता है। साथ ही आत्मध्यान निश्चित, एकांत और शांत स्थान पर ही अच्छी तरह हो सकता है। अतएव भगवान ने जंगल और पर्वतों के प्रशांत कुंजों गिरि–कन्दराओं और गुफाओं में जाकर आत्मध्यान करना निश्चित किया।

भगवान महावीर को हृदय से ज्ञान, वैराग्य तो प्रारम्भ से ही था, उस पर तत्कालीन सामायिक अवस्था में अग्नि में घी का काम किया। जब वह बालक थे तो पिता ने अध्यापक को पढ़ाने के लिए बुलाया, अध्यापक ने पढ़ाया। बेटा ! बोलो 1 बालक ने पढ़ा, पुनः अध्यापक ने कहा बोलो 2 तब बालक ने कहा नहीं गुरुजी आत्मा 1 है। आगे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है तब अध्यापक ने कहा था– कोई महान् आत्मा है। वे निरपराध पशुओं की यज्ञों में बलि को देखकर, वर्णाश्रम पद्धति का सदुपयोग और मान, अभिमान जाति व कुल मद का ताण्डव और संसार के भोले प्राणियों की रुढ़ियों का दास देखकर विचलित हो उठे। संसार के दुःखों, जीवन–मरण की यातनाओं से वे ऊब गये थे। उनका कोमल हृदय विवेक और दया से प्लावित तो था ही, एकदम करुणास्रोत बह निकला। उनने संसार के अज्ञान अंधकार को दूर करना परम आवश्यक समझा; परन्तु उनने आजकल के सुधार प्रेमियों की

भाँति सभा सोसायटियों द्वारा लम्बे–चौड़े व्याख्यान और खण्डन के द्वारा **''पर उपदेश कुशल बहु तेरे, जो आचरहिं ते नर न घनेरे''** की उक्ति को सार्थक करने वालों की रीति–नीति का अवलम्बन नहीं किया। प्रत्युत उनका इस अटल सिद्धांत पर पूर्ण विश्वास था। वे इसकी सत्यता और सार्थकता का अनुभव करते थे कि **''आत्मज्ञान शून्यजनों को नहीं परबोधन का अधिकार''।**

अतएव सर्वप्रथम अपने को पूर्ण राग–द्वेषजन्य कमियों और कमजोरियों से रहित सर्व कष्ट और सत्य वक्ता दूसरों को प्रभावित करने वाली अपूर्व आत्मशक्ति का, जो सत्य और संयम व आत्म श्रद्धा से पैदा होती है, स्वामी बनाना निश्चित किया और उसकी प्राप्ति के लिए संसार के भौतिक सुखों को लात मारकर, धन–धान्य कुटुम्बीजन व वैभवशाली राज्य का त्यागकर, काँच और कंचन, सम्मान और अपमान, पूजा और निन्दा, शत्रु और मित्र में समाचार जानकर इन्द्रादिक देव आनन्द से भर गये। भगवान दीक्षा लेकर शीघ्र ही केवलज्ञान प्राप्त करेंगे और अपनी दिव्यध्वनि द्वारा प्राणियों को कल्याण का मार्ग बतायेंगे। इस बात का स्मरण कर वे आनन्दित हो उठे और दीक्षा महोत्सव मनाने के लिए भगवान के महलों के द्वार पर आ पहुँचे। शक्तिभर भक्ति प्रकट कर देव और मनुष्यों ने तपकल्याणक उत्सव मनाया।

भगवान ने 32 वर्ष की आयु में सन्यास ग्रहण कर लिया और एकान्त वन और पर्वतों पर तपश्चरण करने लगे। उनने अपनी अनन्त आत्मशक्ति को प्रकट करने के लिए दिव्यज्ञान और अमरत्व प्राप्त करने के लिए संसार के क्षण स्थाई सुखों को ठुकरा दिया। माता–पिता, कुटुम्बीजन और वैशाली

जैसे विशाल राज्य का परित्याग किया। यही नहीं वे माँस, मज्जा और रुधिरादि के पिण्ड शरीर से भी ममत्व नष्ट कर एकान्त गहन वन में चले गए। भगवान का त्याग और आत्म कल्याणर्थियों के लिए आदर्श स्वरूप है। प्रायः देखा जाता है आत्मकल्याण की बड़ी–बड़ी बातें करने वाले भी जब त्याग सर्वस्य नहीं किंचित् भी त्याग का समय आता है तब क्षेत्र और काल, अतिक्रम और अतिचार, संहनन और संस्थानों की ओट लेकर निकल भागते हैं; परन्तु भगवान की क्रिया लोकरंजन के लिए तो थी ही नहीं। वे तो अपनी आत्मा को पहचान चुके थे, आत्मानुभव के आनन्द का पान कर चुके थे। भला वे इस सांसारिक माया में कैसे फँसे रह सकते थे। वे ममकार और अहंकार जन्य सांसारिक श्रृंखला को तोड़कर वन में रहने लगे।

भगवान का साधु जीवन अलौकिक था। साधु जीवन के जिस क्रम और नियम का उनने आगे चलकर संसार को उपदेश दिया था, वे उस समय स्वयं उसी क्रम और नियम का पूर्ण रूप से पालन कर रहे थे। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग रूप पंच महाव्रत, आत्मनिरीक्षण, ध्यान, व्युत्सर्ग और परीषह विजय उग्र तप में वे लीन हो गये। अनेक दुष्ट जन्य महान् कष्टों की परवाह न करते हुए मित्र और शत्रु में सम्भाव रखने लगे। वे आत्म और अनात्म के पूर्ण ज्ञाता थे। अतएव स्व को ग्रहण करना और पर को त्याग करना ही उनका आचरण था। वे आहारचर्या करने के लिए कभी–कभी नगर में आते थे वरन् सदैव निर्जन एकान्त शांत गहन वन में विचरते हुए आत्मध्यान करते थे।

इस प्रकार कुछ समय तक तप की शक्ति व साहस से उनने चिर शत्रु आत्मा के गुणों को ढकने वाले मोहनीय, ज्ञानावर्णी, दर्शनावर्णी व अन्तराय

नामक चार कर्मों को नाशकर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य को प्रकट कर लिया। इस समय वे पूर्ण ज्ञाता, सर्वज्ञ, पूर्ण समदृष्टि, वीतराग और पूर्ण अभयदाता, हितोपदेष्टा पद को प्राप्त कर चुके थे। अब वे वस्तु का यथार्थ स्वरूप जानने वाले दिव्यज्ञान और यथार्थ स्वरूप बतलाने वाली दिव्य वाणी के स्वामी बन चुके थे।

भगवान की इस विजय के समाचार सुनकर इन्द्रादिक देवगण एक बार फिर अपने इष्टदेव त्रैलोक्य–हितैषी, अहिंसा और मैत्री से जीवन्त भगवान महावीर के प्रति अपनी श्रद्धा, भक्ति और प्रेम प्रदर्शित करने के लिए इस मृत्यु लोक में आये। भगवान के केवलज्ञान प्राप्ति की खुशी में उनने अत्यन्त सुन्दर तरह–तरह के सर्वप्राणियों को शरण देने वाले मण्डप की रचना की और भगवान राग–द्वेष, मोह, अज्ञान आदि कर्मशत्रु और इन्द्रिय, मन, इच्छा आदि नो कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में वे भगवान को 'जिन' नाम से पुकारने लगे और उनका जयघोष करने लगे। अपने इष्टदेव आदर्श और उपास्य देव के प्रति अपनी–अपनी शक्ति के अनुसार सर्व ही देव, मनुष्य तिर्यंच आदि प्राणी भक्ति प्रदर्शित करने लगे।

समवशरण के बीचों–बीच त्रिकटनी युक्त 'गंधकुटी (मंच)' थी। जो तरह–तरह की ध्वजाओं, मंगल द्रव्यों और अतिशय आश्चर्य और भगवान की महत्ता प्रकट करने वाली वस्तुओं से युक्त थी। गंधकुटी के ऊपर सुन्दर कमल पर भगवान के बैठने योग्य अत्यन्त सुन्दर और पवित्र सिंहासन था। संसार में डुबाए रखने वाले कर्मों के भारी बोझ के दूर हो जाने से भगवान का दिव्य शरीर अत्यन्त निर्मल एवं हल्का हो गया था। जिससे वे 5000 धनुष

ऊपर **'अन्तरिक्ष'** आकाश में रह सकते थे। वे इच्छा, द्वेष, खेद, विस्मय, शोक, भूख, प्यास, निन्द्रा, भय, हास्य आदि 18 दोषों से बिल्कुल मुक्त थे। पूर्ण ज्ञान और आनन्द मुक्त दर्शकों को शान्ति देने वाले और श्रोताओं को कल्याण का मार्ग बताने वाले थे।

उनका दिव्य उपदेश सुनने के लिए सभी प्रकार के भव्य जीव ही समवशरण की सभा में पहुँच पाते हैं।

भगवान महावीर की दिव्य देशना 30 वर्ष तक चलती रही। 72 वर्ष की उम्र में प्रभु ने सर्व कर्म नाशकर मोक्ष (निर्वाण) पद प्राप्त किया।

* कविता *

आओ तुम महावीर धरा पर, एक बार फिर से आ जाओ।
हिंसा, चोरी, अत्याचारी से, भारत की लाज बचाओ।।

हे वीर ! प्रभु तुमसे रखता यह, भारत देश बहुत कुछ आशा।
नहीं मिले जब तुम हमको, छाई मन में बहुत निराशा।।
कुर्सी पर बैठे गद्दारों ने, लूटा देश का आज खजाना।
शांति दूत बनकर के भगवन्, तुम भारत का ताज बचाना।।
जन-जन के मन में तुम प्रभुजी, देश प्रेम का गीत सुनाओ।
आओ तुम महावीर धरा पर... ।।1।।

कहीं बाढ़, भूचाल कहीं, बस की टक्कर हो जाती है।
चावल, दाल, अरु तेल कहीं, शक्कर भी खो जाती है।।
जो भी बैठा है गद्दी पर, उससे पाई बहुत निराशा।
आन संभालो तुम भारत को, सबकी लगी है तुम पर आशा।।

दीनों के अंतश की चाहत को, सुनकर प्रभुजी आ जाओ।।
आओ तुम महावीर धरा पर... ।।2।।

सोने की चिड़िया भारत को, लूटा आज लुटेरों ने।
शासन करके लूट लिया है, इस भारत को गोरों ने।।
अब भी इस प्राचीन देश को, शस्त्रों का बल पाक दिखाता।
छुप-छुप करके जाने कितने, उल्टे-सीधे जाल बिछाता।।
जाल बिछे हैं जो भी जितने, उनको आकर तुम सुलझाओ।।
आओ तुम महावीर धरा पर... ।।3।।

पुकार कर रहे मूक पशु भी, जिनका आज गला है कटता।
बन बैठे कई देश शिरोमणि, फिर भी करते कितनी शठता।।
अधिक कहें क्या? आकर देखो, कैसी है ये अर्थव्यवस्था।
'विशद' सिंधु वंदन कर कहता, आन दिखा दो फिर से रस्ता।।
त्रिशला के नंदन बन करके, कुण्डलपुर में फिर से आ जाओ।

आओ तुम महावीर धरा पर, एक बार फिर से आ जाओ।
हिंसा, चोरी, अत्याचारी, से भारत की लाज बचाओ।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

जिन्हें अपना बनाया है, उन्हीं की राह पर चलना।
ज्ञान की रोशनी देने, सदा ही दीप सा जलना।।
बनाया लक्ष्य जो अपना, उसी का ध्यान रखना है।
गुरु (प्रभु) जो राह दिखलाएँ, उसी अनुरूप तुम ढलना।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

अक्षय तृतीया

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, वह फल निश्चित ही देते।
करें आप फल देय अन्य को, स्वयं किये निष्फल होते।।

संसार में जो जैसा करता है उसको वैसा ही फल भोगना पड़ता है। इसलिए मनुष्य को सुखी जीवन जीने के लिए श्रेष्ठ और सुसभ्य कार्य करना चाहिए। वर्तमान के श्रेष्ठ कार्यों पर ही भविष्य की सुख-शांति निर्भर करती है। **'जो होगा देखा जायेगा'** जो मनुष्य सिर्फ यह सोचकर के सहसा ही जीवन में जिस कार्य को कर लेता है, वह भविष्य में पश्चात्ताप करता है और कर्मोदय से मिले हुए कष्ट को प्राप्त होता है। इसलिए तो कहाह्लह्ल प्रकृति का पैगाम, जिनेन्द्र का सिद्धान्त और विधि का विधान ये साम्यवादी होते हैं। इनकी दृष्टि में कोई छोटा क्या और बड़ा क्या? कहने का मतलब है कि संसार में कोई भी हो उसे अपने किये हुए कृत्य का फल भोगना पड़ता है। कहा भीह्लह्ल

एक बार ऋषभदेव राज्य अवस्था में राजगद्दी पर आसीन थे। तभी कुछ लोगों ने आकर उनसे निवेदन किया कि जो आपके द्वारा सत्कर्म जीवनयापन के साधन बताये गये थे, उसमें से हम लोग कृषि कर्म करके अपना जीवनयापन करने का उद्यम कर रहे हैं; पर जिस समय बैलों से दांय करते हैं अर्थात् उन गेहूँ की बालों पर बैलों के पैरों से रौंदवाते हैं तब ना जाने कितना सारा धान्य बैल ही खा जाते हैं और हमें जीवनयापन में परेशानी होती है। धान्य को बचाने के लिए हमें क्या करना चाहिए? तब ऋषभदेव महाराज ने उन्हें मुख में मुस्का अर्थात् जाली बाँधने की सलाह दी। उनके द्वारा उपदेश ही स्वयं उनके लिए कर्म का मुस्का बंध गया।

इस तरह अबोध लोगों का नेतृत्व करते हुए ऋषभदेव महाराज का 83 लाख पूर्व वर्ष का समय व्यतीत हो गया। एक समय जब वह देवी नीलांजना का नृत्य देख रहे थे। उसी समय उस नीलांजना का निधन हो गया तभी सौधर्म इन्द्र ने अपनी विक्रिया ऋद्धि से उसके जैसे ही दूसरी नीलांजना नृत्य करने के लिए प्रस्तुत कर दी फिर भी उन्हें उसकी मृत्यु का अहसास हो गया तभी उन्हें अपनी मृत्यु का भी अहसास हो गया और मन ही मन सोचने लगे कि जीवन तो बड़ा ही क्षणभंगुर है। पता नहीं कब हृदय की धड़कन रुक जाए और अच्छी भली जिन्दगी पर पानी फिर जाए। इस तरह चिन्तन और मंथन करते हुए उन्हें जीवन से विरक्ति हो गयी। जैसे ही उन्हें विरक्ति हुई, वे अपने राज्य के कार्यभार को अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को सौंपकर जंगल में जाने के लिए तत्पर हुए। तभी लौकान्तिक देव आकर उनके वैराग्य की अनुमोदना करने लगे। इस तरह ऋषभदेव महाराज ने वन में जाकर **'नमः सिद्धेभ्य'** बोलकर सिद्धों की साक्षीपूर्वक जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। इनके साथ चार हजार राजाओं ने स्वामीभक्ति के वशीभूत होकर दीक्षा ग्रहण की। यह युग का आदि का प्रथम चरण मुनि-मुद्रा का था।

ऋषभदेव महामुनिराज 6 माह तक तपस्या में लीन रहे। तभी हीन संहनन को धारण करने वाले अर्थात् अधिक समय तक क्षुधा की वेदना को सहन ना करने वाले कई राजा और महाराजा जिन्होंने मुनि-दीक्षा धारण की थी। वे अपने पद से च्युत हो गये। 6 माह के उपरांत जब ऋषभदेव महामुनिराज आहारचर्या के लिए नगर में आए तब कोई नवधा भक्ति के बारे में जानता नहीं था अर्थात् धर्म का निर्वाह कोई भी गृहस्थ करना नहीं जानता था।

इस तरह जब भी ऋषभदेव महामुनिराज आहारचर्या के लिए नगर में आते तब उस समय लोग अज्ञानता के कारण कहीं उन्हें धन, पैसा, हीरा, जवाहरात, हाथी, घोड़े और भी अनेक प्रकार की सांसारिक वस्तुएँ भेंट करने की चेष्टा करते। पर इन सब बातों से ऋषभदेव महामुनिराज का क्या लेना-देना था। इस तरह नित आहारचर्या के लिए आते हुए लगभग 6 माह व्यतीत होने को थे (कहीं-कहीं विधि न मिलने का समय 7 माह 9 दिन का आता है) तभी एक दिन हस्तिनापुर में आहारचर्या के लिए ऋषभदेव महामुनिराज आये हुए थे। राजा श्रेयांस अपने महल के झरोखे में बैठे हुए प्रकृति की छटा का आनन्द ले रहे थे। उसी समय उन्हें पूर्व जन्म की याद आ गई अर्थात् उन्हें पूर्व भव का जाति-स्मरण हो आया। वास्तव में जन्म-जन्मांतर के जो धर्म के संस्कार प्राप्त होते हैं वो समय आने पर जागृत हो जाते हैं और ऐसा ही श्रेंयास राजा के साथ हुआ।

9 भव पूर्व ऋषभदेव महामुनिराज राजा वज्रजंघ की पर्याय में थे। उनकी पत्नी श्रीमती ने उस समय एक महामुनिराज को जंगल में आहार की व्यवस्था करके उन्हें आहार दिया था। वही राजा वज्रसंघ का जीव ही महामुनि ऋषभदेव बना और श्रीमती का जीव राजा श्रेयांस बना था। धर्म का संस्कार ऋषभदेव महामुनिराज को देखकर जागृत हो गया तभी श्रेयांस राजा ने तत्क्षण ही महलों से उतरकर ऋषभदेव महामुनिराज का पड़गाहन किया। पड़गाहन कर नवधा भक्तिपूर्वक उन्हें इक्षु रस का आहार भी दिया। मुनिराज ने मात्र 3 अंजली आहार ग्रहण किया। इस तरह एक वर्ष के उपरान्त ऋषभदेव महामुनिराज की पारणा हो सकी।

बड़े आश्चर्य की बात है कि ऋषभदेव महामुनिराज का 6 माह तक आहार क्यों नहीं हो पाया? यह एक विचारणीय विषय है। जब कर्म

सिद्धान्त के प्रति दृष्टिपात करते हैं तो इस बात का ज्ञान होता है कि ऋषभदेव महामुनिराज ने राज्य अवस्था में उन अबोध लोगों को बैलों के मुख में मुस्का बाँधने के लिए कहा था, तब उन लोगों ने अबोधता के कारण उन बैलों को मुस्का बाँधे हुए लगभग 6 घंटे के लिए जोता। क्योंकि उस समय युग का आदि था, उस समय कर्म का शुभारम्भ ही हुआ था, इस कारण लोग बड़े ही अबोध थे। माना कि ऋषभदेव ने उनकी सुविधा के लिए राज-अवस्था में उपदेश दिया था; पर उन अबोध लोगों को छोटी सी गलती के कारण बैलों को 6 घण्टे तक भूखा रहना पड़ा और वह कर्म मुनि अवस्था में ऋषभदेव महाराज के उदय में आया। इसलिए वह कर्ज उन्हें ब्याज के साथ चुकाना पड़ा। किसी कवि ने कहा हैह्लह्ल

जे कर्म बड़े बलवान टरत नैया टारे, टरत नैया टारे।
इनसे सब टक्कर मार-मार के हारे।।

भगवान ऋषभदेन ने 6-7 घण्टे मुस्का बाँधने का कर्मफल 6-7 माह तक आहार प्राप्त नहीं हो सका अर्थात् भगवान ने दीक्षा लेते ही 6 माह तक ध्यान लगाया और उसके पश्चात् आहार लेने निकले तो 7 माह 9 दिन तक विधि प्राप्त नहीं हुई, कुल 13 माह 9 दिन तक निराहार रहना पड़ा।

कर्म ऐसा महाबली है कि वह साक्षात् तीर्थंकरों को भी नहीं छोड़ता है। फिर हम और आप जैसे लोगों की तो बात ही क्या है। गहराई से विचार किया जाए तो देखा जाता है कि कर्म पागल कुत्ते की भाँति होते हैं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति कुत्ता पालता है तो उसे सहलाता है, खिलाता है। यदि वह पागल हो जाए और किसी इंसान को काट ले तो उस समय पर तो कुछ नहीं, मात्र थोड़ा सा घाव होकर मल्हम लगाने से ठीक हो जाता

है; किन्तु 6–7 माह बाद जब कुत्ते का जहर फैलता है तो इंसान भी पागल होकर कुत्ते की तरह भौंक–भौंक कर मरता है। उस समय उस इंसान के पास बचने का कोई चारा नहीं रहता है। यदि इंसान समय रहते एक इंजेक्शन के द्वारा दवा ले लेता है तो शायद वह उस दशा को पाने से बच भी सकता है; किन्तु इंजेक्शन लगवाना भी सहज नहीं होता है, बहुत पीड़ादायक होता है।

ठीक उसी प्रकार इंसान की दशा है। पहले तो अपने सामान्य जीवन में कर्मरूपी कुत्तों को पालता है, उनके साथ क्रीड़ा करता है; किन्तु कर्मबन्ध होकर जब उदय में आता है तो इंसान भी कर्म की पीड़ा से छटपटाता है, रोता है, चिल्लाता है। यदि समय रहते किसी प्रकार कर्मों की आलोचना, निन्दा आदि के द्वारा या तपश्चरण आदि के द्वारा कर्म का निरसन कर देता है तो अवश्य ही कर्म के बंध से बच जाता है। जिस प्रकार मर्ज (घाव) के लिए दवा उपयोगी होती है, उसी प्रकार कर्म के कर्ज पर दुआ परम औषधि का कार्य करती है।

अर्थात् तीर्थंकर परमात्मा वज्रवृषभ संहनन के धारी तीर्थंकर प्रकृति प्राप्त करने वाले होने से उन्हें आहार प्राप्त भी न हो तो भी उनके शरीर में एवं साधना में कोई कमी नहीं आती है। वह अपनी साधना करते हुए कर्म निर्जरा करते हैं और आत्म–साधना कर कैवल्यज्ञान प्राप्त कर अनन्त सुख के भोगी मोक्ष को प्राप्त करते हैं; किन्तु हीन संहनन के धारी प्राणियों, साधुओं की साधना निरन्तर चल सके इस हेतु दान तीर्थ का प्रवर्तन करने हेतु तीर्थंकर परमात्मा आहारचर्या हेतु निकलते हैं। इस विधि के आधार पर श्रावक निर्ग्रन्थ मुनिराजों के लिए आहार देते हैं और साधु जन अपनी साधना कर कर्म शृंखला को नष्ट कर आत्मसिद्धि प्राप्त करते हैं।

आदिम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ के लिए आज आहार प्राप्त हुआ था। दाता का दान अक्षय रूप हो गया एवं परम्परा भी अक्षय हो गई, इसलिए आज का दिन 'अक्षय तृतीया' के रूप में जाना जाता है।

पद्मपुराण, स्कन्दपुराण आदि वैष्णव पुराणों में इस मास का माहात्म्य वर्णित है। इस मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया का महत्त्व विशेष है। इसे युगादि तिथि भी कहा जाता है। कुछ लोग इस तिथि को सत्युग और कुछ त्रेतायुग का प्रारम्भ हुआ मानते हैं। 'भविष्यत–पुराण' में वर्णित है– वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया पुण्यमती है, वह स्नान आदि कार्यों द्वारा अनन्त फल देने वाली है। इस दिन जो कुछ थोड़ा बहुत दान किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। इसलिये इसे 'अक्षय तृतीया' कहा जाता है।

कहते हैं कि मदांध अत्याचारी क्षत्रिय राजाओं का संहार करने वाले परशुराम जो विष्णु के अवतार थे, उनका जन्म इस दिन हुआ था। अतः उनकी स्मृति में इस दिन परशुराम जयन्ती मनाई जाती है। सिक्खों का पावन पर्व वैशाखी भी वैशाख मास में पड़ता है।

ज्योतिष शास्त्रज्ञों के अनुसार वैशाख मास में सूर्य मेष राशि का होता है। जो मानव जीवन को सर्वाधिक ऊर्जा प्रदान करने वाला है। किसी भी मास का शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष की अपेक्षा शुभ माना गया है और अक्षय तृतीया तिथि 'जया तिथि' है। उक्त तिथि को किये जाने वाले कार्यों में सफलता मिलेगी, ऐसी मान्यता है। यदि उक्त तिथि में रोहिणी नक्षत्र का योग भी हो जाय तो 'सोने में सुहागा' है। स्नान, दान, जप, होम आदि धार्मिक एवं लौकिक कृत्यों के लिए शुभ मानी गई 'अक्षय तृतीया' को बिना मुहूर्त विचारे विवाह आदि मांगलिक कार्य करने का विधान है।

उपरोक्त अनेक हेतुओं से सिद्ध होता है कि अक्षय तृतीया दान का पर्व माना गया है।

*** भजन ***

तर्ज – पावन हो गई....

अक्षय तृतीया पर्व ये आया, भक्तों के कल्याण का।
सारा जग यह पर्व मनाए, अक्षयकारी दान का।।

नाभिराय मरुदेवी के गृह, आदिनाथ ने जन्म लिया।
इन्द्रों ने ले जा मेरु पर, बालक का अभिषेक किया।
इन्द्र भक्ति में लीन हुए जो, यह गुण है श्रद्धान् का।।

क्षीर नीर के कलशा लेकर, इन्द्रभाव से आते हैं।
भक्तिभाव से अर्चा करके, जय–जयकार लगाते हैं।
अवसर मिला सभी इन्द्रों को, जिनवर के गुणगान का।।

षट्कर्मों का आदि प्रभु ने, सम्यक् शुभ संदेश दिया।
धर्म प्रवर्तन किया आपने, मुक्ति का उपदेश दिया।
सद्भक्तों ने अवसर पाया, प्रभु पद में सम्मान का।।

कामदेव था पुत्र आपका, चक्रवर्ति बलधारी था।
चक्ररत्न को पाने वाला, षट्खण्डी अधिकारी था।
चक्रवर्ति भी हुआ पराजित, दुष्कृत था यह मान का।।

मृत्यु देखकर नीलाञ्जना की, प्रभु ने संयम धार लिया।
चार हजार साथ थे भूपति, वन की ओर विहार किया।
छह महीने तक विधि मिली न, विधि का यही विधान था।।

ह्नह्नह्न●●●ह्नह्नह्न

श्रुतपंचमी

(जिनवाणी का ज्ञान)

श्रुत जीवन का अमृत है। श्रुत को वैराग्य की संजीवनी भी कहा जा सकता है। संदेह, अज्ञान, अंधविश्वास जैसी कुरीतियों और बुराइयों का अन्त एकमात्र स्वाध्याय के माध्यम से ही किया जा सकता है अन्यथा नहीं। भगवान महावीर सर्व महान् आचार्य परम्परा के श्रुतधर शाश्वत् स्थितिपोषक आचार्यों के माध्यम से आज तक जो कुछ भी श्रुत–अमृत हमें मिला है वह भी कम नहीं है। बस हमारी प्यास हमें जिज्ञासु बनाकर श्रुत उपयोगिता का मूल्यांकन कर देती है। श्रुत का अभ्यास स्वाध्याय के माध्यम से ही संभव है। श्रुत का अभ्यास किये बिना वैराग्य, साधना कभी भी भटक सकती है। आत्मस्वरूप का बोध, कर्त्तव्यनिष्ठा, लक्ष्यनिष्ठा, सतत् चिंतन एवं लक्ष्यभूत मंजिल की दिशा में सतत् वर्धमान प्रयास सब श्रुत अभ्यास के बिना संभव नहीं है।

गुरुपदेश से वैराग्य की साक्षात् प्रेरणा मिलती है; किन्तु आज की समस्या यह है कि गुरु समय–समय पर जो उपदेश देते हैं उसमें तथ्यभेद, दिशाभेद, क्रियाभेद आदि कभी–कभी उपस्थित हो जाता है। ऐसी स्थिति में श्रावक किंकर्त्तव्यमूढ़, दिशाविहीन, गतिशून्य होकर कुछ उलझ–सा जाता है; लेकिन इन सब उलझन का श्रावक के लिए श्रुत अभ्यास से दूर रहने के सिवाय और कुछ कारण नहीं है।

आज तो समस्याएँ अनेक हैं; क्योंकि यह तो कलिकाल, पंचम काल है। मूल रूप में महावीर के पथ से भटक कर इस ग्रन्थ, पंथ, सम्प्रदाय का छद्म रूप से प्रचार करने वाले अधिक हैं। पंथ सम्प्रदाय के

संकीर्ण सोच में रहकर ही जिन्होंने श्रुत को देखा है वे समाज को विसंवाद, पंथवाद, जातिवाद के सिवाय और कुछ नहीं दे पाए; परन्तु जिनमत शासन दर्शन का काल पंचमकाल के अंतिम समय तक है। अतः हमें सतत् श्रुत अभ्यास करके भगवान महावीर के पथ में आई मलिनता को दूर करने में कभी पीछे नहीं हटना चाहिए। ये हमारा श्रुतपंचमी पर्व का अंतिम लक्ष्य होना चाहिए।

आदिनाथ भगवान एवं महावीर जयंती, गुरु पूर्णिमा, वीरशासन जयंती, दीपावली, रक्षाबन्धन की भाँति श्रुत पंचमी की आराधना भी जैन परम्परा में प्रतिवर्ष की जाती है। भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक श्रुत की अविच्छिन्न धारा चलती रही है। जो आज भी चल रही है।

श्रुत शब्द दो अक्षरों से मिलकर बना है। श्रु- सुनना, त- तल्लीनतापूर्वक अर्थात् तल्लीन होकर सुनना। श्रुत का अर्थ है- वाणी आप्त वचन आगम उपदेश जैनदर्शन में ज्ञान अभ्यास को बहुत महत्त्व दिया गया है। सोलहकारण भावना में अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग का कथन किया है। इससे सिद्ध है कि ज्ञानाभ्यास से कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति होती है।

जैनदर्शन में सम्यक् श्रुत को जिनागम कहा है जो अनादिकाल से चला आ रहा है। इसके मूलकर्त्ता जिनेन्द्र देव हैं जो अनादिकाल से होते आए हैं और अनंतकाल तक होते रहेंगे। आज इस काल के मूल अर्थकर्त्ता अंतिम तीर्थंकर महावीर भगवान हैं और द्रव्य श्रुत के कर्त्ता गौतम गणधर हैं। सुधर्माचार्य एवं जम्बूस्वामी अंतिम अनुबद्ध केवली हुए। विष्णुवर्धन, गोवर्धन, अपराजित, नंदीवर्धन तथा अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु हुए।

तत्पश्चात् विशाखाचार्य आदि 11 आचार्य ग्यारह अंगों के धारक हुए। इस प्रकार मोटे तौर पर भगवान महावीर के निर्वाण से 683 वर्षों तक अंग पूर्ववेत्ताओं की परम्परा रही और सभी अंगों व पूर्व के अंतर्गत चौथे महाकर्म प्रकृति प्राभृत के लिए निश्चित ज्ञाता थे।

आचार्य धरसेन महाराज काठियावाड़ में स्थित गिरिनगर (गिरनार पर्वत) की चन्द्रगुफा में रहते थे। जब वे बहुत वृद्ध हो गए और अल्पायु जानकार उन्हें यह चिन्ता हुई कि अवसर्पिणी काल के प्रभाव से श्रुतज्ञान का दिनों-दिन ह्रास होता जा रहा है और इस समय मुझे जो कुछ श्रुत प्राप्त है तथा मैं अपना श्रुत दूसरों को नहीं दे सका तो यह भी मेरे ही साथ समाप्त हो जाएगा। इस प्रकार की चिंता से और श्रुतरक्षण के वात्सल्य से प्रेरित होकर उन्होंने महिमा नगर दक्षिणापथ में हो रहे साधु-सम्मेलन के पास एक पत्र भेजकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया। सम्मेलन में समागत प्रधान आचार्यों के प्रमुख अर्हद्वली ने धरसेन के पत्र को बहुत गंभीरता से पढ़ा और श्रुत के ग्रहण व धारण में सामर्थ्यवान, नाना-विनय से विभूषित देश, कुल जाति से शुद्ध व्याकरण आदि समस्त कलाओं से पारंगत ऐसे दो योग्य साधुओं को धरसेनाचार्य के पास भेजा।

जिस दिन वे **साधु गिरिनगर** पहुँचने वाले थे, उसकी पूर्व रात्रि में आचार्य धरसेन ने स्वप्न में देखा कि धवल एवं विनम्र दो बैल आकर उनके चरणों में नमस्कार कर रहे हैं। स्वप्न देखने के साथ ही आचार्यश्री की निद्रा भंग हो गई और वे **'श्रुतदेवता जयंवत रहे'** ऐसा कहते हुए उठकर बैठ गए। उसी दिन दक्षिणायन से भेजे गए वे दोनों साधु वंदनादिक कृतिकर्म करके और दो दिन विश्राम करके तीसरे दिन उन्होंने आचार्यश्री

से अपने आने का प्रयोजन कहा। आचार्यश्री उनके वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा आशीर्वाद दिया।

आचार्यश्री के मन में विचार आया कि पहले इन दोनों नवागत साधुओं की परीक्षा करनी चाहिए कि ये श्रुत ग्रहण व धारण आदि के योग्य हैं या नहीं; क्योंकि स्वच्छंद बिहारी व्यक्तियों को विद्या पढ़ाना संसार व भय को ही बढ़ाने वाला होता है। ऐसा विचार करके उन्होंने नवागत दोनों साधुओं को परीक्षार्थ दो मन्त्र विद्याएँ सिद्ध करने के लिए दीं। उनमें से एक मंत्र विद्या हीन अक्षर वाली और दूसरी अधिक अक्षर वाली थी। दोनों को एक-एक मंत्र विद्या देकर कहा कि इन्हें तुम लोग दो दिन के उपवास से सिद्ध करो।

दोनों साधुओं ने गुरु मंत्ररूप विद्या लेकर भगवान नेमिनाथ की निर्वाण भूमि गिरनार गिरि पर बैठकर मंत्र विद्या की साधना करने लगे। मंत्र विद्या साधना करते हुए जब उनको विद्याएँ सिद्ध हुईं तो उन्होंने विद्या की अधिष्ठात्री देवी को देखा एक देवी के दाँत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है। देवियों के ऐसे विकृत अंगों को देखकर साधुओं ने विचार किया कि देवताओं के ऐसे विकृत अंग तो होते नहीं है। अतः मंत्र में निश्चित ही कही अशुद्धि है। ऐसा विचार कर मंत्र सम्बन्धी व्याकरण में कुशल उन्होंने अपने-अपने मंत्रों को शुद्ध किया और जिसके मंत्र में अधिक अक्षर था, उसे निकालकर एवं जिसके मंत्र में कम अक्षर था उसे मिलाकर उन्होंने पुनः अपने-अपने मंत्रों से विद्या सिद्ध करना प्रारम्भ किया तब दोनों देवियाँ अपने स्वाभाविक सुन्दर रूप में प्रकट हुईं और बोली- स्वामिन् आज्ञा दीजिये, हमें क्या करना है? तब दोनों साधुओं ने

कहा कि आप लोगों से हमें कोई ऐहिक और पारलौकिक प्रयोजन नहीं है। हमने तो गुरु आज्ञा से मंत्र विद्या की साधना की है। ये सुनकर वे देवियाँ अपने स्थान पर चली गईं। मंत्र विद्या की सफलता से प्रसन्न होकर वे आचार्य धरसेन महाराज के पास पहुँचे और उनके पाद मूल की वंदना करके विद्या सिद्धि संबंधी सारा वृत्तान्त निवेदन किया।

आचार्य धरसेन अपने अभिप्राय की सिद्धि और समागत साधुओं की योग्यता देखकर प्रसन्न हुए और 'बहुत अच्छा' कहकर उन्होंने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वार में ग्रन्थ का पढ़ाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार क्रम से व्याख्यान करते हुए आचार्य धरसेन ने आषाढ़ शुक्ला एकादशी के पौर्वाह्न काल में ग्रन्थ समाप्त किया। विनयपूर्वक इन दोनों साधुओं ने गुरु से ग्रन्थ का अध्ययन सम्पन्न किया है यह जानकर भूत जाति के व्यंतर देवों ने उन दोनों में से एक की पुष्पावली से शंख, तूर्य आदि वादित्रों को बजाते हुए पूजा की। उसे देखकर आचार्य धरसेन ने उनका नाम **'पुष्पदन्त'** रखा। दूसरे साधु की अस्त-व्यस्त स्थित दंत पंक्ति को उखाड़कर समीकृत करके उनकी भी भूतों ने बड़े समारोह से पूजा की। यह देखकर आचार्य धरसेन ने उनका नाम **'भूतबलि'** रखा।

अपनी मृत्यु को निकट जानकर इन्हें मेरे वियोग से संक्लेश न हो, यह सोचकर और वर्षाकाल समीप देखकर धरसेनाचार्य ने उन्हें उसी दिन अपने स्थान को वापस जाने का आदेश दिया। यद्यपि वे दोनों साधु गुरु के चरणों में कुछ अधिक समय रहना चाहते थे तथापि गुरु के वचनों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। ऐसा विचार कर वे उसी दिन वहाँ से चल दिये और अंकलेश्वर (गुजरात) में आकर उन्होंने वर्षाकाल बिताया। वर्षाकाल

व्यतीत कर पुष्पदंत आचार्य तो अपने भानजे जिनपालित के साथ वनवास देश को चले गये और भूतबलि आचार्यश्री द्रमिल देश को चले गए।

तदनंतर पुष्पदंत आचार्य ने जिनपालित को दीक्षा देकर गुणस्थानादि बीस प्ररूपणा का अध्ययन कराया जैसा कि 'गोम्मटसार जीवकांड' में सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमीचन्द्राचार्य ने निम्न प्रकार बीस प्ररूपणा वर्णित की हैंह्न

गुण जीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गाणाओ य।
उवओगो वि य कमसो, बीसं तु परूवणा भणिदा।।

अर्थात् गुणस्थान, जीव समास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाएँ और उपयोग इस प्रकार ये बीस प्ररूपणाओं से गर्भित सत्प्ररूपणा के सूत्रों की रचना की और जिनपालित को पढ़ाकर उन्हें भूतबलि आचार्य के पास भेजा। उन्होंने जिनपालित के पास बीस प्ररूपणा गर्भित सत्यप्ररूपणा के सूत्र देखे और उन्हीं से यह जानकर कि पुष्पदंत आचार्य अल्पायु हैं, अतएव महाकर्म प्रकृति प्राभृत का विच्छेद न हो जाए यह विचार कर भूतबलि आचार्य ने द्रव्य प्रमाणानुगम को आदि लेकर आगे के ग्रन्थ की रचना की। जब ग्रन्थ रचना पुस्तकारूढ़ हो चुकी तब ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन भूतबलि आचार्य ने चतुर्विध संघ के साथ बड़े समारोह से उस ग्रन्थ की पूजा की। तभी से यह तिथि श्रुतपंचमी के नाम से प्रसिद्ध हुई और उस दिन से आज तक जैन धर्मावलम्बी जन बराबर श्रुतपूजन करते हुए एवं महोत्सव मनाते हुए चले आ रहे हैं।

इसके पश्चात् भूतबलि आचार्य ने अपने द्वारा रचे षट्खंड रूप आगम को जिनपालित के हाथ पुष्पदंत आचार्य के पास भेजा। वे इस 'षट्खंडागम' को देखकर और अपने द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्य को

भली–भाँति सम्पन्न हुआ, जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने भी ग्रन्थ की चतुर्विध संघ के साथ पूजा की।

भगवंत भूतबलि ने बीस प्ररूपणा गर्भित सत्यप्ररूपणा सूत्रों का विस्तार करके 'षट्खंडागम' का रूप दिया और यह 'षट्खंडागम' का मंगलाचरण महामंत्र से प्रारम्भ कर लिपिबद्ध रूप से मूल आगम बना। कारण कि इसके पहले कोई आगम लिपिबद्ध नहीं हुआ था। 'समयसारादि' चारों अनुयोगों के ग्रन्थ इसी के आधार पर लिपिबद्ध हुए। ऐसे मूल 'षट्खंडागम' की रचना की समाप्ति ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को हुई थी। अतएव हम सभी भव्यात्माओं को 'षट्खंडागम' को मूल आगम मान करके भक्तिपूर्वक पूजा महोत्सव आदि करना चाहिए।

आगमाभ्यास से ही कषायों की मंदता, संसार, शरीर और भोगों से विरागता, व्यवहार एवं परमार्थ दोनों उज्ज्वल करने का हेतु सम्यक् श्रुत ही है। स्वाधीन अविनाशी धन ज्ञान ही है। अतः स्वयं अपनी संतान और सभी भव्य जीवों को ज्ञानदान करो। ऐसा 'छहढ़ाला'कार पं. दौलतरामजी ने भी वर्णन किया हैह्न

ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।
यह परमामृत, जन्मजरामृत रोग निवारण।।
सम्यक्ज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
इस ज्ञान ही सौ भरत सीझा, और सब पट पेखना।।

कवि द्यानतरायजी ने रत्नत्रय पूजन में भी दर्शाया हैह्न

इसी प्रकार ज्ञानाभ्यास की महिमा का वर्णन आचार्य कुन्दकुन्द देव ने 'रयणसार' में गाथा क्र. 150 से निम्न प्रकार किया हैह्न

णाणेण झाण सिद्धि, झाणा दो सव्व कम्म णिज्जरणं।
णिज्जरण–फलं मोक्खं, णाणाभ्यासं तदो कुज्जा।।150।। र.सा.

ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है। ध्यान से सब अष्ट कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा का फल मोक्ष है। इसलिए भव्यात्माओं को ध्यान की सिद्धि करने वाला ज्ञानाभ्यास करना चाहिए।

आज भौतिकवादी युग में जिनागम की सुरक्षा, संरक्षण, प्रचार एवं प्रसार का एक मात्र प्रमुख साधन जैनागम के प्रबल स्तम्भों का विज्ञापन के चमत्कारों से बचाव करते हुए जिनप्रणीत जैन ग्रन्थों आदि को पठन–पाठन कर आत्मसात करने का अहर्निश प्राणपन से अभ्यास कर इस मानव पर्याय को सार्थक करना, तभी श्रुतपंचमी महोत्सव जनकल्याणार्थ प्रयोजनीय हो सकेगा।

हमारे पूर्वाचार्यों को इस बात का ज्ञान अच्छी तरह से था कि पंचमकाल में मन को स्थिर रखने के लिए आगम ग्रन्थ ही सहायक हो सकते हैं। अतः हमारे आचार्यों एवं मुनिराजों ने करुणा बुद्धि से ओत–प्रोत होकर आध्यात्म के धरातल पर स्थित होकर आत्मचिंतन के नवनीत विचारों को ताड़पत्र एवं भोजपत्र पर लिपिबद्ध किया। उत्तरवर्ती जिनवाणी आराधकों ने उन्हीं ग्रन्थों की हजारों प्रतिलिपियाँ करवाकर हर मन्दिर में शास्त्र भण्डारों में विराजित करवाईं। ग्रन्थों के संरक्षण, संवर्द्धन एवं प्रचार–प्रसार हेतु चातुर्मास के अवसर पर साधु संघों के स्थायी प्रवास के कारण यह कार्य काफी द्रुत गति से आगे बढ़ता रहता था। साधु संघों की प्रेरणा प्राप्त अनेक श्रेष्ठियों ने अनेकों ग्रन्थों की हजारों प्रतिलिपियाँ करवाकर वितरित की हैं, इसका उल्लेख हमारे

जैन इतिहास में मिलता है। श्रुतपंचमी के अवसर पर भी पाण्डुलिपियों की साज–सँभाल का कार्य होता रहता था, पुराने वेष्ठनों को बदला जाता था। आज इस दिशा में समाज, विद्वतगणों का ध्यान हट गया है जो कि चिंता का विषय है।

अंधकारमय क्षेत्र जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह राष्ट्र जहाँ साहित्य नहीं है।।

ग्रन्थों का क्षरण जैन संस्कृति का क्षरण है। किसी भी धर्मदर्शन, संस्कृति की प्राचीनता, मौलिकता उसके साहित्य से ही आँकी जाती है। सखेद कहना पड़ रहा है कि हमारी जैन संस्कृति को नष्ट करने के लिए अनेक विध्वंसकारियों ने उपद्रव किये हैं। समय–समय पर हजारों–हजारों ग्रन्थों की होलियाँ जलाई गईं तो सैकड़ों ग्रन्थ जल में प्रवाहित किये जा चुके हैं। फिर भी हमारे मनीषी श्रावकों ने हर प्रकार की परिस्थितियों में ग्रन्थों को बचाकर हमें सुपुर्द किया है; किन्तु हम उन शास्त्र भण्डारों को उजड़ते हुए देख रहे हैं। वर्तमान में जैन साहित्य की उपेक्षा का चित्रण इस घटना से हो रहा है। एक व्यक्ति पुस्तकें बेचते हुए सेठजी के द्वार पर पहुँचा सेठजी से कहा– सेठजी मेरी पुस्तक खरीद लीजिए, एक उपन्यास खरीद लीजिए। सेठ ने टालते हुए कहा– मेरे पास उपन्यास है, मुझे नहीं चाहिए। तब उसने कहा– कहाँ है आपके पास उपन्यास? तब सेठजी ने अलमारी में रखी पुस्तक की ओर इशारा करते हुए कहा– वो रही अलमारी में। तब उसने कहा– यह उपन्यास हो ही नहीं सकता। सेठ ने पुनः पूछा– क्या है फिर? तब उसने कहा उस पर चढ़ी धूल स्पष्ट बता रही है कि कोई धार्मिक शास्त्र

है। उठाकर देखा तो धर्मशास्त्र ही निकला। कितनी शर्म की बात है, यदि उपन्यास होता तो सेठजी पढ़ते, उनकी पत्नी, पुत्री, पुत्र, पुत्रवधू आदि सभी पढ़ते अतः उस पर धूल चढ़ने का सवाल ही पैदा नहीं होता है; किन्तु धर्मशास्त्र न सेठजी पढ़ते हैं और न ही उनकी पत्नी, बच्चे और कोई भी नहीं पढ़ने से धूल चढ़ती रहती है। यदि ऐसा होता रहा तो निश्चित ही हमारी जैन संस्कृति का नामोनिशान नहीं बचेगा और हम जैन कहलाने के अधिकारी नहीं होंगे।

यदि हम अपने विरासत में मिली हुई पाण्डुलिपी रूपी साहित्य सम्पदा को नहीं समझ पा रहे हैं तो आगामी पीढ़ी हमें माफ नहीं कर सकेगी। जब हमारे शास्त्र भण्डार चूहों और दीमकों के कारण पूर्णतः नष्ट हो चुके होंगे। अतः ग्रन्थों के संरक्षणार्थ कुछ कार्य समाज के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को करना चाहिए।

1. श्रुतपंचमी पर्व पर समस्त प्राचीन अर्वाचीन ग्रन्थों को शास्त्र भण्डारों एवं अलमारियों से बाहर निकालकर धूप में रख दें। उनकी अच्छी तरह सफाई करें, पुराने वस्त्रों को नवीन वस्त्रों में बदलें।

2. श्रुतपंचमी के अवसर पर पाँडुलिपी प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन कर पाँडुलिपी विशेषज्ञों को तैयार किया जाए।

3. श्रुतपंचमी पर्व के अवसर पर विद्वानों को सम्मानित कर उन्हें पाँडुलिपिक संपादन कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए एवं प्रकाशित कराना चाहिए।

4. श्रुतपंचमी पर्व के अवसर पर अपने-अपने मन्दिर में शास्त्र

भण्डारों के ग्रन्थों में वृद्धि करना चाहिए। स्वाध्याय, पाठशाला, वाचनालयों की शुरूआत करना चाहिए।

5. श्रुतपंचमी के अवसर पर साधु-संघों के सान्निध्य में जिनवाणी की शोभायात्रा एवं जिनवाणी का संरक्षण कैसे हो? इस विषय पर व्याख्यान मालाओं का आयोजन किया जाए एवं श्रावक को कम से कम एक ग्रन्थ खरीदकर मन्दिरजी में विराजमान करना चाहिए।

जिनश्रुत की परम्परा इतिहास एवं पुरातत्त्व के आधार पर भी सिद्ध होती है।

राजस्थान के बीकानेर एवं झाबुआ जिले की आलीराजपुर में श्रुतदेवी एवं विद्यादेवी की प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं एवं श्रुतदेवी की मूर्तियाँ अपनी प्राचीनता प्रकट कर रही हैं। परमार शासनकाल में इन श्रुत एवं विद्या देवियों की प्रतिमाओं को कलात्मक ढंग से पाषाण पर शिल्पांकित किया गया था तथा कांस्य इत्यादि धातुओं में भी ढाला गया था। श्रुतदेवी की मूर्ति 17ह्न17.5 सेमी. आकार वाली काँसे पर बनी हुई देवी आसन सहित है।

आसन पर चार पाए हैं। कमलासन पर त्रिभंग मुद्रा में स्थानक मूर्ति के चारों हाथों में दाईं ओर के नीचे का हाथ वरद-मुद्रा में है। ऊपर के हाथ में नाल सहित पद्म (कमल) है। बायीं ओर नीचे हाथ में पुस्तक तथा ऊपर के हाथ में अक्षमाला है। पैरों में पायल, गले में हार है, जिसकी एक लड़ देवी के उन्नत उरोजों पर पड़ी हुई है। सुन्दर केश, कानों में कुण्डल, गम्भीर नाभि, सिर के पीछे प्रभावली तथा उस पर पत्तियों का आलेखन है। ('संस्कार सागर' से साभार)

कहने का तात्पर्य है– श्रुत की परम्परा बहुत प्राचीन है। श्रुत जीवन का अमृत है, श्रुत संजीवनी बूटी है। जिसके जीवन में श्रुत अमृत आ जाता है वह महान्, मुक्ति वधू को प्राप्त कर लेता है तभी हमारा श्रुतपंचमी जैसा पावन, पवित्र पर्व को मनाना सार्थक होगा।

जब हम अपने जीवन में कुछ परिवर्तन लाएँ और जिनवाणी की सेवा में जीवन समर्पित करें।

भगवान महावीर नहीं इसका हमें गम है।
उनकी यादगार में हमारे नयन भी नम हैं।।
फिर भी हम सभी सौभाग्यशाली हैं।
प्रभु की देशना हमारे पास है क्या यह कम है?

भगवान वीर निर्वाण के पश्चात् गौतम गणधर से लेकर अर्हद्बली ने पंचवर्षीय युगप्रतिक्रमण के अवसर पर महिमानगर जिला सतारा में एक महान् यति सम्मेलन किया। जिसमें सौ योजन तक के साधु सम्मिलित हुए। उस समय उन साधुओं में अपने–अपने शिष्यों के प्रति कुछ पक्षपात की बू देखकर उन्होंने मूलसंघ की सत्ता समाप्त करके उसे पृथक्–पृथक् नामों वाले अनेक अवान्तर संघों में विभाजित कर दिया। जिसमें कुछ के नाम ये हैं– 1. नन्दी संघ, 2. वृषभ संघ, 3. सिंह संघ, 4. देव संघ, 5. काष्ठा संघ, 6. वीर संघ, 7. अपराजित संघ, 8. पंचस्तूप संघ, 9. सेन संघ, 10. भद्र संघ, 11. गुणधर संघ, 12. गुप्त संघ, 13. चन्द्र संघ इत्यादि।

इनके अतिरिक्त भी अनेकों अवान्तर संघ भी भिन्न–भिन्न समयों पर परिस्थितिवश उत्पन्न होते रहे। धीरे–धीरे इनमें से कुछ संघों में

शिथिलाचार आता चला गया, जिनके कारण वे जैनाभाषी कहलाने लगे (इनमें छः प्रसिद्ध है– 1. श्वेताम्बर, 2. गोपुच्छ या काष्ठा, 3. द्रविड़, 4. यापनीय या गोप्य, 5. निष्पिच्छ या माथुर, 6. भिल्लक)।

श्रुत तीर्थ की उत्पत्तिह्लह्ल

संवत् 650 में अर्थात् वीर निर्वाण के 1120 वर्ष पश्चात् स्थापित हुआ था। इसी को मुहर्र या शाबान सन् भी कहते हैं।

* जिनवाणी के लाल *

मेरे बंधु चले उस अलमारी के पास, देखे वहाँ के हाल।
कैसे हैं हमारे यहाँ पर जिनवाणी माँ के लाल।।
अलमारी को खोलकर देखा तो कीड़ों का नहीं कुछ लेखा–जोखा।
देखते ही साथ हम तो खाकर रह गये थे धोखा।।

शायद यह कोई भूसा का घर होगा।
कहीं से थोड़ा सा पानी गिर गया होगा।।
इसलिये हो गई होगी सड़न आरंभ।
तथा कीड़ों का भी हो गया होगा प्रारंभ।।

गौर से पास में जाकर देखा जाना।
वहाँ की वास्तविकता को पहिचाना।।
यह तो जिनेन्द्र की वाणी माँ जिनवाणी है।
जिसकी बात सभी ने एक स्वर में मानी है।।

लेकर अलमारी को कर दिया बंद डाल दिया ताला।
जगह–जगह पर लगा है मकड़ियों का जाला।।

ये क्या कर डाला है जिनवाणी माँ का हाल।
देखकर लगता जैसे हो कोई मृतक का कंकाल।।

सुनने की तो फुरसत नहीं खोलकर देखे कौन।
इसलिये हम हो गये मध्यस्थ एकदम मौन।।
साल में एक बार रक्षाबंधन की कथा के लिये अलमारी खोलते।
एक तरफ से दूसरी तरफ तक पूरा टटोलते।।

कभी पर्यूषण पर्व में स्वाध्याय करना पड़ जाता।
बुजुर्गों की निभाना है हमें तो बिल्कुल नहीं आता।।
हम तुम्हें देखने में लग जायेंगे तो कौन देखेगा हमारा खाता।
इसलिये हमें छुट्टी दो हम पर कृपा करो हे जिनवाणी माता !।।

आप देखना कोने-कोने में फटी चिन्दियाँ मिल जायेंगी,
यदि चुहियाँ नहीं खायेंगी तो भूखों मर नहीं जायेंगी।।
जिनवाणी का खरीदना तो दूर देखना भी बंद कर दिया।
उन स्थानों को मासिक पत्रिकाओं से भर दिया।।

जिनवाणी जिनदेव से पुकार-पुकार कर कहती।
आपको क्या पता मैं यहाँ किस हाल में रहती।।
मेरे पूत मेरा मुख उघाड़कर भी नहीं देखते हैं।
आप एक बार तो देखो कितने घटिया कपड़े में लपेटते हैं।।

कभी-कभी तो घूरे पर भी फेंक दिया करते हैं।
कुछ लोग उठाकर परचून में बेच दिया करते हैं।।
अरे ! आज कल मेरे कुछ चहेतों ने कर दिया कमाल।
धड़ाधड़ छपवाते जाते दैनिक अखबार की चाल।।

सामने बैठकर आत्मा-आत्मा बोलते हैं।
और फिर विलायती झूला जैसा झूलते हैं।।
ताली ठोक-ठोक कर करते हैं सदा बात।
जहर मिलाने में नहीं चूकते दिन-रात।।

करके रख दिया हमारे अर्थ का अनर्थ।
बात-बात में लगा लेते जिनवाणी माँ की शर्त।।
आजकल तेरहीं में करवाते हमारा गिफ्ट।
चमार और मेहतर को मिलेगी पढ़ने की लिफ्ट।।

सरेआम हमारे लिये दीमक काटकर खाती है।
हमारे कपूतों को देखकर भी शर्म नहीं आती है।।
अब कहाँ तक सुनाये अपने दुःख और व्यथा।
बहुत लंबी-चौड़ी है हमारे दुःखों की कथा।।

हे भगवान ! सुनलों हमारी पुकार कर दो मेरा उद्धार।
वश आप ही है हमारा जीवन आदर्श और प्राणाधार।।
एक बार आँख खोलकर देखना है कैसा यह काल।
क्या हो रहा आपकी इस दिव्य देशना का हाल।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

गुरु चरणों में समर्पण, परमात्मा का फूल है।
गुरु मुख से प्राप्त ज्ञान, मिटाता भव कूल है।।
जो लेते चरण-शरण गुरुवर की, बन्धु वे धन्य हैं।
शरण ना लेना ही, जीवन की सबसे बड़ी भूल है।।

ह्लह्लह्ल●●●ह्लह्लह्ल

प.पू. 108 आचार्य श्री विशदसागरजी महाराज की पूजन

पुण्य उदय से हे ! गुरुवर, दर्शन तेरे मिल पाते हैं।
श्री गुरुवर के दर्शन करके, हृदय कमल खिल जाते हैंॐ
गुरु आराध्य हम आराधक, करते उर से अभिवादन।
मम् हृदय कमल में आ तिष्ठो, गुरु करते हैं हम आह्वाननॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वनन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम् सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

सांसारिक भोगों में फँसकर, ये जीवन वृथा गंवाया है।
रागद्वेष की वैतरणी से, अब तक पार न पाया हैॐ
विशद सिंधु के श्री चरणों में, निर्मल जल हम लाए हैं।
भव तापों का नाश करो, भव बंध काटने आये हैंॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोध रूप अग्नि से अब तक, कष्ट बहुत ही पाये हैं।
कष्टों से छुटकारा पाने, गुरु चरणों में आये हैंॐ
विशद सिंधु के श्री चरणों में, चंदन घिसकर लाये हैं।
संसार ताप का नाश करो, भव बंध नशाने आये हैंॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय संसार ताप विध्वंशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चारों गतियों में अनादि से, बार-बार भटकाये हैं।
अक्षय निधि को भूल रहे थे, उसको पाने आये हैंॐ
विशद सिंधु के श्री चरणों में, अक्षय अक्षत लाये हैं।
अक्षय पद हो प्राप्त हमें, हम गुरु चरणों में आये हैंॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

काम बाण की महावेदना, सबको बहुत सताती है।
तृष्णा जितनी शांत करें वह, उतनी बढ़ती जाती हैॐ
विशद सिंधु के श्री चरणों में, पुष्प सुगंधित लाये हैं।
काम बाण विध्वंश होय गुरु, पुष्प चढ़ाने आये हैंॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय कामबाण विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

काल अनादि से हे गुरुवर ! क्षुधा से बहुत सताये हैं।
खाये बहु मिष्ठान जरा भी, तृप्त नहीं हो पाये हैंॐ
विशद सिंधु के श्री चरणों में, नैवेद्य सुसुन्दर लाये हैं।
क्षुधा शांत कर दो गुरु भव की ! क्षुधा मेटने आये हैंॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह तिमिर में फंसकर हमने, निज स्वरूप न पहिचाना।
विषय कषायों में रत रहकर, अंत रहा बस पछतानाॐ
विशद सिंधु के श्री चरणों में, दीप जलाकर लाये हैं।
मोह अंध का नाश करो, मम् दीप जलाने आये हैंॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय मोहान्धकार विध्वंशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अशुभ कर्म ने घेरा हमको, अब तक ऐसा माना था।
पाप कर्म तज पुण्य कर्म को, चाह रहा अपनाना थाॐ
विशद सिंधु के श्री चरणों में, धूप जलाने आये हैं।
आठों कर्म नशाने हेतु, गुरु चरणों में आये हैंॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता अरु बादाम सुपाड़ी, इत्यादि फल लाये हैं।
पूजन का फल प्राप्त हमें हो, तुमसा बनने आये हैंॐ
विशद सिंधु के श्री चरणों में, भाँति-भाँति फल लाये हैं।
मुक्ति वधु की इच्छा करके, गुरु चरणों में आये हैंॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय मोक्ष फल प्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रासुक अष्ट द्रव्य हे गुरुवर ! थाल सजाकर लाये हैं।
महाव्रतों को धारण कर लें, मन में भाव बनाये हैंॐ
विशद सिंधु के श्री चरणों में, अर्घ समर्पित करते हैं।
पद अनर्घ हो प्राप्त हमें गुरु, चरणों में सिर धरते हैंॐ

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- **विशद सिंधु गुरुवर मेरे, वंदन करूँ त्रिकाल।**
मन-वन-तन से गुरु की, करते हैं जयमालॐ

गुरुवर के गुण गाने को, अर्पित है जीवन के क्षण-क्षण।
श्रद्धा सुमन समर्पित हैं, हर्षायें धरती के कण-कणङ्क
छतरपुर के कुपी नगर में, गूँज उठी शहनाई थी।
श्री नाथूराम के घर में अनुपम, बजने लगी बधाई थीङ्क
बचपन में चंचल बालक के, शुभादर्श यूँ उमड़ पड़े।
ब्रह्मचर्य व्रत पाने हेतु, अपने घर से निकल पड़ेङ्क
आठ फरवरी सन् छियानवे को, गुरुवर से संयम पाया।
मोक्ष ज्ञान अन्तर में जागा, मन मयूर अति हर्षायाङ्क
in vkpk;Z izfr"Bk dk 'kqHk] nks gtkj lu~ ik¡p jgkA
rsjg Qjojh calr iapeh] cus xq# vkpk;Z vgkAA
तुम हो कुंद-कुंद के कुन्दन, सारा जग कुन्दन करते।
निकल पड़े बस इसलिए, भवि जीवों की जड़ता हरतेङ्क
मंद मधुर मुस्कान तुम्हारे, चेहरे पर बिखरी रहती।
तव वाणी अनुपम न्यारी है, करुणा की शुभ धारा बहती हैङ्क
तुममें कोई मोहक मंत्र भरा, या कोई जादू टोना है।
है वेश दिगम्बर मनमोहक अरु, अतिशय रूप सलौना हैङ्क
हैं शब्द नहीं गुण गाने को, गाना भी मेरा अन्जाना।
हम पूजन स्तुति क्या जाने, बस गुरु भक्ति में रम जानाङ्क
गुरु तुम्हें छोड़ न जाएँ कहीं, मन में ये फिर-फिरकर आता।
हम रहें चरण की शरण यहीं, मिल जाये इस जग की साताङ्क
gwI gmVm H$mo mH$ag_Vm go, gmar __Vm H$m Ë`m JH$a|Ÿ&
श्री देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में, मन-वच-तन अनुराग करेंङ्क
गुरु गुण गाएँ गुण को पाने, औ सर्वदोष का नाश करें।
हम विशद ज्ञान को प्राप्त करें, औ सिद्ध शिला पर वास करेंङ्क

ॐ ह्रीं 108 आचार्य श्री विशदसागर मुनीन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुरु की महिमा अगम है, कौन करे गुणगान।
मंद बुद्धि के बाल हम, कैसे करें बखानङ्क

ब्र.आस्था दीदी

इत्याशीर्वादः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)बबब

आचार्य श्री 108 विशदसागरजी महाराज की आरती

(तर्ज:- माई री माई मुंडेर पर तेरे बोल रहा कागा.....)

जय-जय गुरुवर भक्त पुकारे, आरति मंगल गावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्.....4 मुनिवर के.......

ग्राम कुपी में जन्म लिया है, धन्य है इन्दर माता।
नाथूराम जी पिता आपके, छोड़ा जग से नाता।।
सत्य अहिंसा महाव्रती की.....2, महिमा कहीं न जाये।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्.....4 मुनिवर के.......

सूरज सा है तेज आपका, नाम रमेश बताया।
बीता बचपन आयी जवानी, जग से मन अकुलाया।।
जग की माया को लखकर के.....2, मन वैराग्य समावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्.....4 मुनिवर के.......

जैन मुनि की दीक्षा लेकर, करते निज उद्धारा।
विशद सिंधु है नाम आपका, विशद मोक्ष का द्वारा।।
गुरु की भक्ति करने वाला.....2, उभय लोक सुख पावे।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्.....4 मुनिवर के.......

धन्य है जीवन, धन्य है तन-मन, गुरुवर यहाँ पधारे।
सगे स्वजन सब छोड़ दिये हैं, आतम रहे निहारे।।
आशीर्वाद हमें दो स्वामी.....2, अनुगामी बन जायें।
करके आरती विशद गुरु की, जन्म सफल हो जावे।।
गुरुवर के चरणों में नमन्...4 मुनिवर के... जय...जय।।

रचयिता : श्रीमती इन्दुमती गुप्ता, श्योपुर